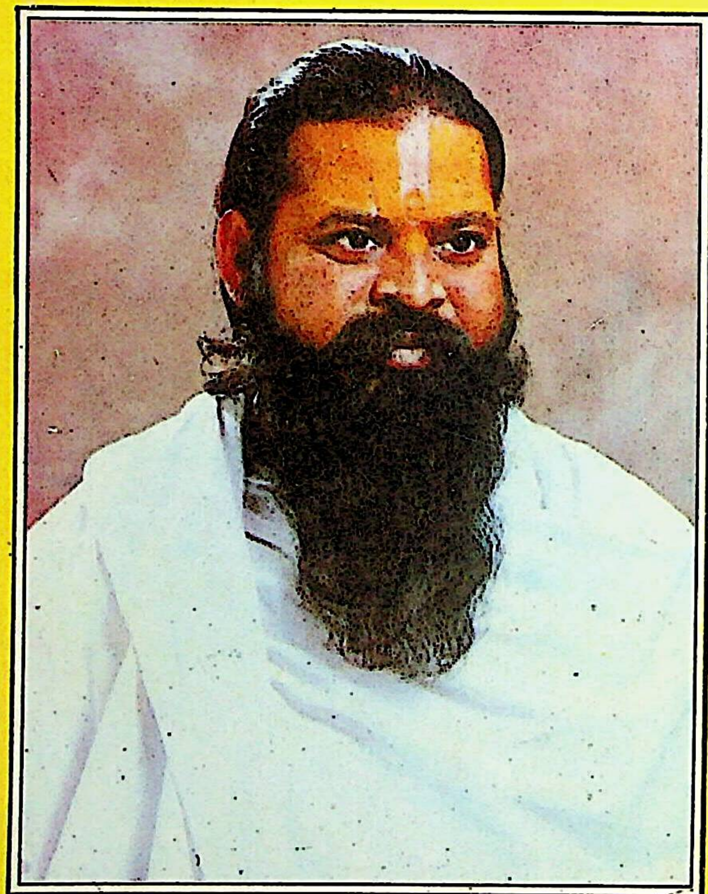
सत्संग-सुधा

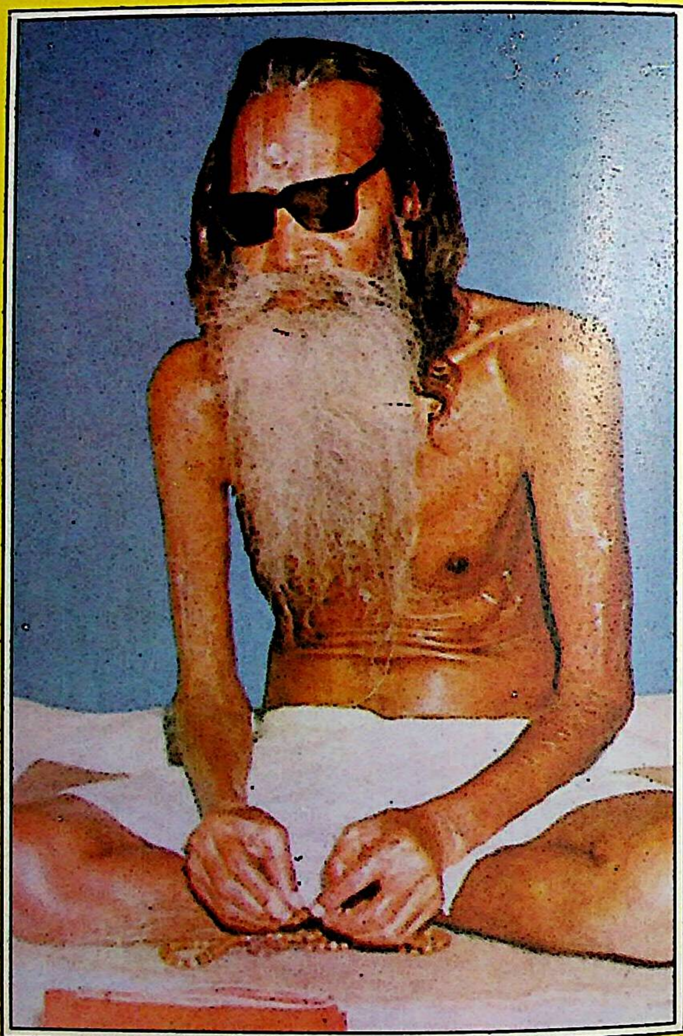
9-5



लेखक

श्री रामशरणाचार्य जी महाराज

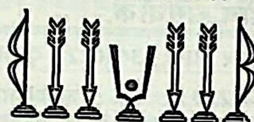
चोंच मन्दिर के वर्तमान गादीपति-पीठाधीश्वर



एकादश गादीपति श्रीश्री १००८ श्री

श्री हरिदास जी महाराज

।। श्रीरामः शरणं मम ।।





सत्संग सुधा

रामशरणाचार्य

श्री सीताराम मन्दिर, चोंच, रामचौक,
बालोतरा–बाड़मेर (राज.)

❖ प्रकाशक एवं पुस्तक प्राप्ति–स्थान :
काशीपीठाधीश्वर श्री रामशरणाचार्य जी म.
श्री सीताराम मन्दिर, चोंच, रामचौक,
पो. बालोतरा, जिला–बाड़मेर (राज.) 344022 दूरभाष –(02988) 23386
फैक्स: (02988) 21743, 22230 ई–मेल:– ramsharanacharya @ yahoo.com

❖ अन्य सम्पर्क केन्द्र :–
(1) श्री सीताराम मन्दिर, काशीपीठ, भिखारीपुर, हाइडिल के सामने, डी.एल.डब्ल्यू., वाराणसी (उ.प्र.) पिन–221001
मोबाईल नं. 098380 42927
(2) नरसिंह टीला, घूपचण्डी, नाटी इमली, वाराणसी (उ.प्र.) पिन–221001
दूरभाष – (0542) 202117, फैक्स– (0542) 352221

❖ लेखक :– रामशरणाचार्य

❖ सम्पादक मण्डल :– हजारीलाल गंगल, प्रमेन्द्र बाफना, भरत बिन्दल

❖ ब्रह्मभोज–यजमान :– स्व. श्री रामनिवासजी अग्रवाल (डीडवाणा) की स्मृति में उनके रुबाटिया परिवार द्वारा प्रकाशित।

❖ प्रथम संस्करण :– 21000 प्रति
चैत्र शु. 1, वि.सं. 2057, ईशवीय नव सहस्त्राब्दी, 2000 ई.

❖ भेंट – 25/– रुपये मात्र

❖ मुद्रक :– कवर पेज:– पुस्तक महल (रेपिडैक्स), दरियागंज, दिल्ली–6
आन्तरिक पृष्ठ:– अनमोल प्रिन्टर्स, जोधपुर

❖ कम्प्यूटरीकृत :– राज ग्राफिक्स, हनुमंत भवन के पास, बालोतरा (राज.)
फोन नं. 21620 (R)



विषय सूची



काशीपीठाधीश रामशरणाचार्य जी : एक परिचय

- पश्चिमी राजस्थान के बालोतरा नगर में जन्म। वहां प्रारंभिक शिक्षा के बाद जोधपुर विश्वविद्यालय में विज्ञान–विषयक शिक्षा।
- रामानंद–संप्रदाय में विरक्त–दीक्षा के बाद काशी में प्राच्य–व्याकरण, साहित्य, दर्शन, पुराण, वेद आदि का गहन अध्ययन–चिन्तन।
- अपनी अनूठी, मंत्र–मुग्ध, जीवन–परिवर्तक, क्रान्तिकारी रोचक–शैली में श्रीमद्भागवत, मानस, वेदांत, हिन्दुत्व आदि विषयों पर प्रवचन।
- हिन्दू–धर्म प्रचारक के रूप में सम्पूर्ण भारतवर्ष के अतिरिक्त लगभग आधे विश्व का प्रवास।
- राम–जन्मभूमि मुक्ति–संघर्ष व विश्व हिन्दू परिषद के केन्द्रिय धर्माचार्य।
- राम–कार सेवा में रासुका के वारण्ट के बावजूद सरदारजी के छद्म वेश में पैदल अयोध्या पहूँचकर 2 नवम्बर– काण्ड का सफल नेतृत्व।
- हिंदू रक्षा–समिति व रामशरण मिशन के संस्थापक–अध्यक्ष के रूप में भारतवर्ष ही नहीं, विश्वभर में घूम–घूमकर हिंदू–जागरण, संगठन व विभिन्न संस्कार–केन्द्रों की स्थापना।
- संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, राजस्थानी, तेलुगु आदि भाषाओं पर समान अधिकार होते हुए भी सामान्यतया संस्कृत में ही सम्भाषण।
- विश्व–धर्म–शांति–सम्मेलन न्यूयार्क संस्था जिसको संयुक्त राष्ट्र संघ की परामर्शकारिणी–सभा का दर्जा मिला है, के भारत में हिंदू– धर्म के प्रतिनिधि।
- विश्व हिन्दू महासंघ काठमाण्डू, अ.भा. गो–रक्षा परिषद्, विश्व संस्कृत प्रतिष्ठानम्, काशी पण्डित सभा आदि संस्थाओं के मानद–सभासद।
- वर्तमान में बिन्दुगादी चोंच, बालोतरा के गादीपति व श्री सीताराम मंदिर चोंच ट्रस्ट व श्री वीरमराम चेरीट्रेबल ट्रस्ट के अध्यक्ष।

भूमिका

अथर्ववेदीय–श्रुति–भगवती कहती है कि **"भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसदि"**। अर्थात् सत्संग में जाने से ही हमारी बुद्धि, सद्बुद्धि बनती है। जैसे एक गन्दे नाले के पास से गुजरने पर हम चाहें या न चाहें तब भी उसमें से दुर्गन्ध आयेगी ही तथा एक बगीचे में जायें तो उसमें हमको सुगन्ध मिलेगीं ही। वैसे ही सत्संग में जाने पर बिना प्रयास ही सद्गुण आयेगें ही। तभी तो गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा कि–

"तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग।।"

एक बार एक राजा के सिहांसन के पास एक तोता उड़कर आ बैठा और वह **"राम–राम"** बोलने लगा। राजा ने प्रसन्न होकर सोने के पिंजरे में उसे आसन दिया। तभी एक दूसरा तोता आकर वहाँ **"मरा–मरा"** बोलने लगा। राजा ने क्रोधित होकर उसे मारने का आदेश दे दिया। तब पहले वाला तोता बोला :–

**"अहं मुनीनां वचनं श्रृणोमि, श्रृणोत्ययं चापि गवाक्ष–वाक्यम्।
न चास्य दोषो न मे गुणोऽस्ति, संसर्गजा दोष–गुणा भवन्ति।।"**

अर्थात्– मैं सन्तों के आश्रम में रहता हूँ, जहाँ उनके मुख से **"राम–राम"** की ध्वनि सुनता हूँ, व यह तोता डाकू–लुटेरों के बीच में रहता हैं, जहाँ **"मरा–मरा"** की ध्वनि सुनता है। इसमें इसका न कोई दोष है और न ही मेरा कोई गुण है। यह तो संगति का ही दोष–गुण होता हैं।

तब क्या आप भी सत्संग से अपने जीवन को अधिक सुखमय बनाना चाहते हैं? या आप वाक्पटुता द्वारा अपनी मित्र–मण्डली आदि में शीघ्र मेल–मिलाप से उन्हे प्रभावित कर अधिक सफल जीवन जीना चाहते हैं? या आप एक अधिक सफल व्यापारी , अधिकारी, क्लर्क, डाक्टर, इन्जीनियर, अध्यापक, छात्र, ग्रहिणी , नेता, वक्ता या किसी भी क्षेत्र में शीघ्र उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त करने की व्यवहार –निपुण– कला जानना चाहते हैं? तो देश–विदेश के लाखों भक्तों की तरह हो सकता है, सत्संग के कुछ क्षण आपका भी चमत्कार–पूर्ण, जीवन –परिवर्तन कर दें। अतः हमारे अन्तरंग–भक्तों द्वारा मेरे प्रवचनों के लेखन पर आधारित इस " सत्संग–सुधा " पुस्तक को अवश्य पढ़ें।

विनयावनत

रामशरणाचार्य

श्री सीताराम मन्दिर, चोंच
बालोतरा (राजस्थान)
दूरभाष – (02988) 23386

आदि शक्ति जेहि जग उपजाया

अनन्त कोटि ब्रह्माण्डात्मक प्रपञ्च की अधिष्ठानभूता सच्चिदानन्द–घन –रूपा भगवती की स्तुति–*" सर्व–चैतन्य–रूपां तामाद्यां विद्याञ्च धीमहि "* में उसे आदि शक्ति के रूप में बताया गया है। कवि कुल चूडामणि गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने भी भगवान् के श्री मुख से उसका परिचय इन शब्दों में कराया है–

" आदि शक्ति जेहि जग उपजाया । सोई अवतरहि मोरि यह माया ।।"

(मा. 1/151)

एक बार तो भगवान् राम ने भूत भावन भोलेनाथ भगवान् शंकर जी द्वारा प्रत्यक्ष दर्शनार्थ तपस्या करने पर स्पष्ट कह दिया कि –

" आह्लादिनीं परां शक्तिं स्तूयाः सात्वत– सम्मताम् ।
तदाराध्यः सदा रामः तदधीनस्तया विना ।
तिष्ठामि न क्षणं शम्भो जीवनं परमं मम ।। "

(अगस्त्य – संहितायाम्)

अर्थात् यदि मुझे साक्षात् प्राप्त करना चाहते हो तो मेरी आह्लादिनी परा शक्ति की आराधना करो। उसके बिना मेरी स्थिति नहीं होती । स्वयं वेद भगवान् का यही आदेश है कि **'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'** शक्ति–विहीन व्यक्ति को आत्मा की भी उपलब्धि कहाँ !

हमारे मिथिला के सन्त विनोद में कहा करते हैं कि श्री जनक जी की सभा में शिव का विशाल धनुष श्री रघुनाथ जी के कौशल से नहीं अपितु वह तो जानकी जी की कृपा से ही टूटा है। तभी तो स्वयं ठाकुर जी ने परशुराम जी से सत्य बात कह दी थी कि –

"छुअतहि टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करों अभिमाना ।।"

(मा. 1/283)

जब द्वीप–द्वीप के आये राजाओं में से दस–दस हजार के मिलकर संयुक्त प्रयास से भी धनुष का उठना तो दूर **'तिल भर भूमि न सके छड़ाई'**। रावण–बाण जैसे महाभट तो उसे छुने का भी साहस न कर सके। ऐसे में जनक जी के हताश हो जाने पर गुरु विश्वामित्र जी के आदेश से श्री रघुनाथ जी तो उठ गए। लेकिन इन आदि शक्ति भगवती जानकी जी ने देखा कि बाल–मराल से कोमलांगी सुकुमार राम जी से यह मन्द्राचल–सा विशाल –धनुष कैसे उठ पायेगा! अतः तुरन्त सावधान होकर शिव–धनुष को ही आदेश दिया कि –

'निज जड़ता लोगन्ह पर डारी। होहिं हरुअ, रघुपतिहि निहारी ।।'(मा.1/258)

आज्ञाकारी सेवक की तरह जानकी जी के **'होहिं हरुअ'** – हल्के हो जाओ, के आदेश को शिरोधार्य करते हुए धनुष ने पूछा कि कितना हल्का हो जाऊँ? 1 टन भार का, या 1 क्विंटल का, या 1 सेर का, या 1 छँटाक का! जानकी जी ने कहा कि इसका निर्णय तो तुम खुद कर लों। क्योंकि जिनको पुष्प–वाटिका में फूल तोड़ने में ही पसीना आ जाएँ, उनके बारे में मैं क्या कहूँ? इसलिये भार के बारे में तो **"रघुपति हि निहारी"** अर्थात् रामजी की ओर देखकर कि जितना ये उठा सकें। बस, उतने ही हल्के हो जाओं और तभी **"छुअत ही टूट पिनाक पुराना"** सम्भव हो पाया ।

यों स्मृति वचनानुसार तो शक्ति और शक्तिमान् में ऐक्य ही है।

" शक्तिश्च शक्तिमद्रूपाद् व्यतिरेकं न वाञ्छति ।
तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहिकयोरिव ।। "

अर्थात् 'जैसे अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति का नित्य तादात्म्य सम्बन्ध है, वैसे ही परमात्मा और उनकी शक्ति का अभिन्न, नित्य, तादात्म्य सम्बन्ध है।' यही बात मानस में भी इस प्रकार कही गई है :–

" गिरा अरथ जल वीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न ।
वन्दऊँ सीताराम पद, जिनहिं परम प्रिय खिन्न ।। " (1/18)

यद्यपि करुणा सभी देवों में होती हैं, किन्तु परम करुणामयी तो आदि–शक्ति, माँ ही हैं। लंका – विजय के पश्चात् हनुमान् जी ने जब माँ श्री जानकी अम्बा को विजय का समाचार सुनाया, उस समय भी वे भयंकर राक्षसियाँ पहरे पर थी जिनका कुकृत्य पिछली बार आने पर हनुमान् जी ने स्वयं देखा था। अतः उनको दण्ड देने के लिए माता जी से पूछा कि आपकी आज्ञा हो तो अब जरा इनको भी कुछ हाथ दिखा दूँ! लेकिन –*'चित्ते कृपा समर–निष्ठुरता च दृष्टा'* अर्थात्– युद्ध भूमि में निष्ठुरता पूर्वक शत्रुओं से लड़ते हुए भी उनको बाणों से पवित्र करके दिव्य–लोक में भेज देने वाली जिस माँ के चित्त में कृपा का सागर लहरा रहा है, उसने तो उल्टा हनुमान् जी को ही शिक्षा देते हुए कहा कि –

" पापानां वाशुभानां वा वधार्हाणामथापि वा ।

कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ।।" (वा.रा.7/113/45)

अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष को चाहिए कि कोई पापी , अशुभ या वध के योग्य अपराध करने वाला ही क्यों न हों, उन सब पर दया करें। क्योंकि ऐसा कोई भी प्राणी नहीं हैं जिससे कभी अपराध होता ही न हों। लेकिन एक भक्त से यह सहा नहीं गया । उसने कह ही दिया, 'मातः ! आपने तो सदा अपराध करने वाली राक्षसियों की भी श्री हनुमान् जी से रक्षा करके श्री रघुनाथ जी की गोष्ठी छोटी कर दी। क्योंकि उन्होंने तो जयन्त और विभीषण की भी रक्षा, शरणागत होने पर की थी। परन्तु आपने तो बिना शरण हुए ही कर दी'–

" मातर्मैथिलि! राक्षसीस्त्वयि तदैवार्द्रापराधास्त्वया,

रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता ।

काकं तञ्च विभीषणं शरणमित्युक्तिक्षमौ रक्षतः,

सा नः सान्द्र–महागस : सुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मिकी ।।"

यहाँ तक कि आपका सान्निध्य रहने पर ही तो स्वयं आपके अंग में व्यथा पहुँचाने वाला महा अपराधी जयन्त भी अशरण होकर गिरते हुए बचा लिया गया। किन्तु आपकी अनुपस्थिति में बेचारा छोटा–सा अपराधी इन्द्र–पुत्र ही

बाली , आपसी घरेलु–झगड़े में व बेचारी अवध्य–स्त्री ताड़का भी मारी गई। क्योंकि आपके सान्निध्य में ही जो श्री रघुनाथ जी की दया व्यक्त होती हैं –

" त्वय्येवाश्रयते दया रघुपतेर्देवस्य सत्यं यतो,
वैदेहि त्वदसन्निधौ भगवता बाली निरामाहतः ।
नित्ये काऽपि वधूर्वधं तव तु सान्निध्ये त्वदंग–व्यथा,
कुर्वाणोऽप्यभितः पतन्नशरणः काको विवेकोज्झितः ।।"

महा अपराधी इन्द्र–पुत्र जयन्त पर कृपा करके माँ ने यह चरितार्थ करके दिखाया है कि :– **'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।'** अर्थात् पुत्र भले ही कुपुत्र हों जायें लेकिन माता कभी कुमाता नहीं होती । कुपुत्र पर भी परम करूणामयी अम्बा शक्ति की तो कृपा ही बरसती हैं। अपराधी के अपराध पर ध्यान न देकर उसको सत्पथ पर ही लाने का यत्न परम कल्याणमयी करूणासागर माँ के द्वारा उचित ही है। क्योंकि – ***'Hate the Sin, not the Sinner.'*** बुराई से घृणा करो, बुरे से नहीं।

सकल सृष्टि की निर्माता–माता के लिये तो सभी पुत्र ही है, अपराधी कौन है ! उसके वात्सल्य के आगे तो न्याय भी गौण हो जाता हैं। इन **विशालाक्षी माँ** की बड़ी–बड़ी आँखों व **आजानुबाहु** प्रभु के लम्बी भुजाओं का यही तो रहस्य है। करूणा–वत्सल माँ अपनी बड़ी–बड़ी आँखों से ऐसे कुपुत्रों को भी खोज–खोज कर के अपनी संस्तुति के साथ भगवान् के पास भेज देती है और प्रभु उन्हें अपने लम्बे वरद हाथों से अपनी ओर लेकर क्षमा कर देते हैं।

प्रभु के न्याय के दरबार में साधारणतया दो पंक्तियाँ लगती है। जो लोग अपने को बेगुनाह समझते हैं, वे सब भगवान् के सामने पंक्ति लगाते हैं, जहाँ उनके न्याय के हिसाब से समय पर उनको न्याय मिलता है। लेकिन जो गुनाहगार दण्ड के भय से प्रभु के पास जाने में डरते हैं, वे सभी करूणामयी माँ की ओर पंक्ति लगाते हैं। माँ, पराम्बा, अनन्तकोटि–ब्रह्माण्ड जननी जानकी जानती है कि ये गुनाहगार हैं, तभी तो मेरे पास आये हैं। फिर इनका कैसा हिसाब ! अतः वहाँ तो उनको तुरन्त ही क्षमा

मिल जाती है। यह देखकर अपने को बेगुनाह समझने वाले भी भाग कर माँ की ओर आ जाते हैं। इस पर एक सन्त ने कहा —

"वो करिश्मे साने, रहमत ने दिखाये रोजे हश्र ।
बेगुनाह कहने लगे, हम भी गुनाहगारों में हैं ।। "

सर्व शास्त्र महत्तात्पर्य गोचरा, निगमागम—वन्दिता श्री रामचन्द्र—राघवेन्द्र हृदयेश्वरी परब्रह्म महिषी राजरानी भगवती सीता जी का जीव—मात्र से सहज स्नेह हैं। परम—पिता परमेश्वर से जीव का सम्बन्ध कराने में उस माँ की प्रमुख भूमिका रहती है । यही तो "सीता" शब्द की व्युत्पत्ति है – "सीता—षिञ् सम्बन्धने, सिनाति सम्बध्नाति, जीवस्य भगवता सह सम्बन्धं कारयतीति सीता।।"

अर्थात् जीव का भगवान् के साथ जो सम्बन्ध कराती है वह 'सीता'। इस व्युत्पत्ति का श्री हनुमन्तलाल जी ने अपने जीवन में पूरा उपयोग किया । माँ का वात्सल्य प्राप्त करने के बाद पिता का स्नेह पाना कुछ सरल हो जाता है। अतः आपने अपनी लंका यात्रा में प्रभु के कार्य के अलावा अपना एक निजी उद्देश्य भी रखा कि किसी प्रकार अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड—ऐश्वर्याधिष्ठात्री माँ जानकी जी से पुत्रत्व का प्रमाण—पत्र प्राप्त किया जाये और हुआ भी यहीं कि एक बार ही नही "त्रिसत्यम्"– 'कोई बात तीन बार कहने से पूर्ण सत्य होती है', के न्याय से माँ से तीन—तीन बार 'सुत' कहलवा दिया—

"है 'सुत' कपि सब तुम्हहि समाना। जातुधान अति भट बलवाना ।।
अजर—अमर गुन निधि 'सुत' होहू । करहुँ बहुत रघुनायक छोहू ।।
सुनु 'सुत' करहि विपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी ।।" मानस

जब वात्सल्यमयी माँ ने किसी को पुत्र स्वीकार कर लिया तो फिर पिता कहाँ जायेंगे ! बलात् 'पुत्र' कहना ही पड़ेगा। लंका से लौटने पर जब प्रभु उनको पहले की तरह 'कपि' शब्द से सम्बोधित करते है :—

" सुनु 'कपि' तोहि समान उपकारी । नहिं कोई सुर नर मुनि तनु धारी।।"

तब हनुमान् जी तुरन्त इशारा करते हैं कि अब मैं केवल 'कपि' नहीं रहा। माँ से पुत्रत्व का प्रमाण–पत्र ले आया हूँ। तब प्रभु को भी कहना पड़ा :–

" सुनु 'सुत' तोहि उरिन मैं नाहीं । देखेऊँ करि विचार मन माहिं ।।"

तभी तो देवाधिदेव महादेव सदाशिव भगवान् शंकर ने भी श्री राघवेन्द्र सरकार के प्रत्यक्ष दर्शनार्थ पहले इन निर्विशेष–सविशेष–निर्गुणसगुण – निराकार–साकार–सदानन्दघन स्वरूपा चिन्मयी भगवती जानकी जी की ही बड़े भक्तिभाव से दिव्य स्तुति इन शब्दों में की :–

' वन्दे विदेहतनया–पदपुण्डरीकं ,
कैशोरसौरभ–समाहृत–योगिचित्तम् ।
हन्तुं त्रितापमनिशं मुनिहंससेव्यं ,
सन्मानसालि–परिपीत–पराग–पुञ्जम् ।। "

भगवान् शिव शंकर ही नहीं ऋग्वेदीय श्रुति भगवती ने तो इन प्रत्यक् चैतन्य ब्रह्म स्वरूपा आदि शक्ति श्री सीताजी की स्तुति में यहाँ तक कह दिया कि –

" अर्वाची सुभगे ! भव , सीते ! वन्दामहे त्वा ।
यथा नः सुभगाऽससि , यथा नः सुफलाऽससि ।। " (ऋग्वेद 4/57/6)

'अर्थात् **(सुभगे ! सीते !)** हे उत्तम ऐश्वर्य देने वाली श्री सीताजी ! **(त्वा वन्दामहे)** हम आपकी वन्दना करते हैं, **(अर्वाची भव)** आप हम पर कृपा करने वाली हों। **(यथा)** जिससे **(नः सुभगा अससि)** हमें उत्तम ऐश्वर्य देने वाली हों **(यथा)** व ताकि **(नः सुफला अससि)** हमें उत्तम फलों को देने वाली हों ।'

ये कोटि–कोटि ब्रह्माण्डात्मक ऐश्वर्याधिष्ठात्री भगवती जानकी जी स्वयं कितनी कोमल है, यह आप कलि–पावनावतार पूज्यपाद गोस्वामी श्री तुलसीदास जी द्वारा विरचित विश्ववन्द्य श्री रामचरित मानस के 'मुद्रिका–प्रसंग' में देख सकते है।

केवट के सामने भगवान् राम उतराई देने के प्रश्न पर निरुपाय चिन्ता–मग्न खड़े हैं। लेकिन श्री जानकी जी को यह कैसे सहन होता ! तुरन्त मणि–जड़ित

मुद्रिका उतराई देने के लिए प्रभु को समर्पित कर दी। किन्तु गोस्वामी तुलसीदास जी ने उसी **'मुद्रिका'** शब्द को इतने सरल शब्द **'मुदरी'** में बदल दिया, एक नये भाव के साथ कि कोमलांगी भगवती जानकी जी के कर–कमलों में वह अंगुठी तो चुभे ही नहीं ,कहीं **'मुद्रिका'**–कठोर–शब्द के संयुक्ताक्षर भी न चुभ जाये। अतः लिखा कि– ***" पिय हिय की सीय जानन हारी। मनि 'मुदरी' मन मुदित उतारी।। "***

केवट के न लेने पर श्री रघुनाथ जी ने भविष्य के गूढ़ रहस्य को समझते हुए उसे अपने हाथ में ही पहन लिया। उसी को सीता–हरण के बाद हनुमन्त लालजी को जानकी जी की खोज में जाते समय पहचान के लिए दे रहे हैं–

' परसा सीस सरोरुह पानी। कर 'मुद्रिका' दीन्हि जन जानी ।। '

किन्तु अब कोमलांगी जानकी जी के हाथ नहीं बल्कि वे कठोर राक्षसों का हनन करने वाले भगवान् राम के हाथ हैं। अतः **'मुदरी'** पुनः **'मुद्रिका'** बन गई। हनुमन्त लाल जी द्वारा अशोक–वृक्ष से जानकी जी के सामने गिराने पर भी वह **'मुद्रिका'** ही है –***'कपि कर हृदयँ विचारि, दीन्हि 'मुद्रिका' डारि तब।'*** और

'तब देखी 'मुद्रिका' मनोहर। राम–नाम अंकित अति सुन्दर ।।'

यहाँ तक कि जानकी जी ने उसे दूर से देख भी लिया, तब भी वह **'मुद्रिका'** बनी रही। किन्तु घबराने की बात नहीं, गोस्वामी जी बहुत सावधान हैं। चूंकि जानकी जी ने अभी उसे स्पर्श नहीं किया, मात्र दूर से देखा है। परन्तु ज्यों ही उठांकर हाथ में लिया, वह **'मुद्रिका'** कोमलांगी जानकी जी के लिए पुनः **'मुदरी'** बन गई:–

' चकित चितव 'मुदरी' पहिचानी । हरष विषाद हृदयँ अकुलानी ।। '

इसीलिए जीव–मात्र के प्रति कोमल–हृदया, जनकसुता जग जननी जानकी पराम्बा **आदिशक्ति** के सुचरित्रों से प्रभावित होकर **'आदि कवि'** वाल्मीकि जी ने अपने **"आदिकाव्य"** रामायण को रामचरित्र के रुप में न देखकर सीता–चरित्र या दूसरे शब्दों में कहें तो **'सीतायन'** के रुप में ही देखना

अधिक श्रेष्ठ समझा। स्वयं–सिद्ध–प्रसिद्ध रामचरित्र पर काव्य लिखना कोई इतनी बड़ी विशेषता नहीं। विशिष्ठता तो इन 'आदि शक्ति' भगवती सीता के माहात्म्य को उजागर करने में है। क्योंकि –

" राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।

रचकर कवि कहलाना सहज सम्भाव्य है।।" अतः कहा कि –

" कृत्स्नं रामायणं काव्यं, सीतायाः चरितं महत्।" (वा.रा.)

एक ग्रामीण को मैंने नित्य रामायण–पाठ का परामर्श दिया तो वह उल्टा मुझे ही कहता है कि इसमें नित्य पाठ की क्या बात है! इतनी छोटी–सी, बस यही तो राम–कथा है–

" एक राम, एक रावण्णा। एक क्षत्री, एक बामण्णा।।

एक दूजे की, नार हर लिन्ही। दूजा एक को मारण्णा।।

बस, इत्ती–सी बात जामें। तुलसी लिख दी पोथन्ना।।"

अकारण – करुणा – वरुणालय – कर्तुमकर्तुमन्यथा – कर्तुं सर्वथासमर्थ अशरणशरण–दीनबन्धु दीनानाथ भक्त वत्सल–कृपासिन्धु–कृपानिधान आनन्दकन्द सच्चिदानन्दघन परात्पर – परब्रह्म भगवान् श्री राघवेन्द्र सरकार की अव्यभिचारिणी पराभक्ति प्राप्त करने के लिए इन अनन्त कोटि ब्रह्माण्डगत विविध वैचित्र्योपेत, भोग्य–भोक्तृकर्तृ–करणादि–निर्माण पटीयसी, अचिन्त्याऽनिर्वाच्य कार्य्यानुमेय स्वानुरूपरूपा, श्रुतिसमधिगम्य–याथातथ्यभावा, अवान्तराऽ – नन्तशक्ति केन्द्र भूता भगवती 'आदि शक्ति' श्री जानकी जी के चरणों में प्रणाम कर विस्तार भय से लेख को यहीं विराम देता हूँ। इति शम्।



वन्दऊँ गुरु पद कंज

मुण्डकोपनिषत् श्रुति भगवती का आदेश है कि **'तद् विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभि–गच्छेत् समित्पाणिः ब्रह्मविद् गुरुम्'** – भौतिकवाद से ऊब जाने पर आध्यात्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिये तत्त्ववेत्ता–गुरु के पास जाना चाहिए। कोई कहे कि नहीं, आध्यात्म–शास्त्रों का अध्ययन तो हम स्वयं ही कर लेंगे ? तो ऐसी बात नहीं है। पानी जो समुद्र में है, उसे हम पीना चाहें तो वह खारा मिलेगा, लेकिन वही जल गुरु–रूपी बादलों की वर्षा द्वारा मिलेगा तो मीठा हो जायेगा। अतः औपनिषत् श्रुति ने **'गुरुमेव'** – गुरु के पास ही जायें, यह कहकर स्पष्ट कर दिया। साढ़े तीन हाथ की इस देह का ही नाम गुरु नहीं है। बल्कि शास्त्रों में **'गुरु'** शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है कि –

'गु' –शब्दस्त्वन्धकारो 'रु' शब्दस्तन्निरोधकः।

अन्धकार–निरोधित्वाद् 'गुरु' इत्यभिधीयते।।

अर्थात् 'गु' शब्द अन्धकार व 'रु' शब्द उस अन्धकार निरोधक पदार्थ का नाम है। अन्धकार निरोधी होने के कारण ही उसका **'गुरु'** नाम सार्थक होता है। तभी कलि–पावनावतार कविकुल चूड़ामणि गोस्वामी श्री तुलसीदासजी ने विश्व–वन्द्य रामचरितमानस के मंगलाचरण में बड़े ही रहस्यमय अद्भुत क्रम में गुरु–वन्दना की। वहाँ प्रारम्भ में आपने – ***' वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर–रूपिणम् '*** में ज्ञान–स्वरुप गुरु को साक्षात् शंकर मानकर वन्दना की।

लेकिन तभी आपको ध्यान आया कि गुरु तो मात्र शंकर या त्रिदेव ही नहीं, अपितु वह तो **'साक्षात् परं ब्रह्म'** ही है। अकारण करुणा–वरुणालय कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम् सर्वथासमर्थ अशरण–शरण दीनबन्धु–दीनानाथ कृपासिन्धु –कृपानिधान सद्गुरुदेव भगवान् के सम्पूर्ण विग्रह–स्वरूप की स्तुति करने में क्या मैं समर्थ हूँ ? नहीं ! अतः पुनः उन्होंने केवल चरण–कमलों की ही स्तुति की–

सो:– वन्दऊँ गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नर रूप हरि ।
महा मोह तम पुंज , जासु वचन रविकर निकर ।।

किन्तु उसमें भी अपने को असमर्थ पाकर आगे गोस्वामी जी केवल गुरु पद रज की वन्दना करके ही इति श्री करने लगे –

वन्दऊँ गुरु पद पदम परागा । सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ।।
अमिय मूरि मय चूरन चारु । समन सकल भव रुज परिवारू ।।

गो. श्रीतुलसीदास जी को फिर भी सन्तुष्टि नहीं हुई । उन्होंने सोचा कि महा महिमाशाली गुरुदेव के चरण – कमल धूलि की भी तो अतुल्य महिमा है। उसके योग्य मैं कहाँ ! अतः गोस्वामी जी गुरुजी के चरण – कमलों की नख–मणि – ज्योति की वन्दना करके ही अपने को धन्य–धन्य मानते हुए लिखते है –

श्री गुरु पद नख मनि गन जोती । सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती ।।

जहाँ मनुष्य के अन्तः स्थल के अन्धकार को दूर करने में भगवान् भास्कर की किरणें भी सर्वथा असमर्थ हो जाती है। वह तो मात्र बाह्य–जगत् के अन्धकार को ही दूर कर सकती है–**"नृणामन्तस्तमोहारी साधुरेव न भास्करः"** अन्तः स्थल के अन्धकार को दूर करने में तो रवि–किरणों की बजाय ये **"नखमणी–ज्योति–किरणें"** ही भारी पड़ती हैं।

इस प्रकार गोस्वामी जी ने श्री गुरुदेव के चरणों की "नख मणि ज्योति" की वन्दना करके मानस की रचना जैसे गुरुतर महासागर को तरने का साहस बँटोरा ।

श्रीमद् भगवद् गीता में कहा गया हैं– **'श्रध्दावान् लभते ज्ञानं तत् परः संयतेन्द्रियः'**– उस गुरू में श्रद्धा अति आवश्यक हैं। लेकिन आजकल के शिष्यों में वह श्रद्धा और सेवा भी लुप्त होती जा रही हैं । किन्तु श्रीमद् भागवतजी में श्रीकृष्ण द्वैपायन वेद व्यासजी ने इसकी ठीक विधि बतलाई हैं– **'विश्वासो गुरु–वाक्येषु स्वस्मिन् दीनत्व भावना'**। गुरुदेव वास्तव में भगवान् का ही साक्षात् स्वरूप हैं–

गुरुर् ब्रह्मा गुरुर् विष्णुः गुरुर् देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परम् ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

किसी कवि ने भी ठीक कहा हैं–

'चरणोदक को जल कहे, गंगाजल को पानी ।
गुरु–देवन को नर कहे, तीनों नरक निसानी ।

बीकानेर महाराज के राजकुमार को एक बार गुरू जी ने बिना कारण ही ऐसा पीटा कि चमड़ी लाल हो गई। लेकिन उन्होनें चुँ नहीं किया । उनका तो सिद्धान्त था कि–

गीर्भिर्गुरूणां परूषाक्षराभिः, तिरस्कृतो याति नरो महत्त्वम् ।
अजात– शोणोत्कषणाः नृपानां, न जातु मौलौ मणयो वसन्ति।।

अर्थात् जब तक हीरे कषाण पर घिसे नही जायेगें, तब तक वे राजाओं के मुकुटों पर नही लग सकते । उसी प्रकार जब तक गुरूजनों की ताड़ना को सहेगा नहीं, तब तक व्यक्ति महान् नहीं बन सकता ।

लेकिन जब गुरू को पूछा गया कि इतने बड़े महाराजा के राजकुमार को अकारण क्यों पीटा गया– तो उन्होनें प्रेम से कहा कि एक दिन यही राजकुमार, राजा बनेगा और छोटे–बड़े अपराधियों को अकारण कभी दण्ड देगा । उन पर कोड़े बरसायेगा। लेकिन आज उस को ये पता तो चला कि कोड़े की पीड़ा कैसी होती हैं! ऐसे गुरू–जन कैसे भी शठ को सुधार कर उसको महापुरुष बना सकते हैं । उस पर गोस्वामी जी ने तो कहा हैं–

चौ.– सठ सुधरहि सतसंगति पाई। पारस परस कुधातु सुहाई।।

यद्यपि पारस किसी लोहे को सोना बना सकता हैं । लेकिन वह उस लोहे को पारस नही बना सकता। किन्तु गुरु ऐसे लोहे जैसे कुशिष्य को भी गुरु ही बना देता है । उस पर एक कवि ने तो ठीक कहा हैं–

पारस अरू गुरु देव में, बड़ो आंतरो जान।
वो पारस सोनो करे; यह करे आप समान।।

ऐसे गुरुदेव की सेवा यदि शिष्य सौ–सौ जन्म भी करे तो भी उस ऋण की पूर्ति नहीं हो सकती हैं । शास्त्रकार तो कहते हैं –

यद्यप्येकोपि शब्दस्तु गुरुः शिष्यं प्रबोधयेत् ।
पृथिव्यां नास्ति तद् द्रव्यम् यद् दत्त्वा चानृणी भवेत् ।।

यदि एक शब्द भी गुरु शिष्य को पढ़ाले तो पृथ्वी में कोई ऐसा पदार्थ नही जो उसके ऋण को पूरा कर सके! तभी कहा गया है कि–

"गुरु गोविन्द दोउँ खड़े, काके लागुँ पायँ ।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविन्द दियो बतायं ।।"

उस गुरु–तत्त्व के बारे में शास्त्रों ने ठीक ही कहा है कि –

' यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैव कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ।। '

अर्थात् जैसी भक्ति इष्ट में हो वैसी गुरु में भी हों । लेकिन इसका यह अर्थ भी नहीं कि "जय गुरुदेव नाम परमात्मा का" कहकर उसका दुरुपयोग किया जाये । दोनों की अपनी सत्ता है । इसको जानने के लिए निगमादेश – 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वर्यान् प्रबोधत ।' 'उठो, जागो और श्रेष्ठजनों के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो' को अपनाना होगा ।



सब विधि भरत सराहन जोगू

आज की विभिन्न समस्याएं चाहे वे भारत की हो या विश्व के अन्य देशों की, सबका समाधान एक ही है और वह है भरत–चरित्र! विश्व–बन्धुत्व के अभाव में जहां एक ओर विभिन्न वर्ग–भेद से सम्पूर्ण विश्व में संघर्ष छिड़ा है तो दूसरी ओर भ्रातृत्व के अभाव में घर–घर में कलह मचा हुआ है । ऐसे कठिन समय में भ्रातृत्व प्रेमावतार श्री भरतजी का जीवन एक आदर्श है । भरतजी के नामकरण में 'भ्रातृ' शब्द के 'भ र त' इन तीनों वर्णों का क्रमशः आनुपूर्विक प्रयोग भी एक विचित्र संयोग रहा होगा। गुरू वशिष्ठजी ने इनको इसी विश्व–बन्धुत्व भावना के भरण–पोषणकर्त्ता जानकर ही यह अन्वर्थक नाम दिया–

विश्व भरण पोषण कर जोई। ता कर नाम भरत अस होई।। —(मानस)

मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान् राम की सारी लीला का मुख्य उद्देश्य 'भरत पयोधी गंभीर' को मथकर 'प्रेम अमिय' प्रकट करना ही रहा था। बड़े–बड़े कवियों के लिए भी अगम्य 'भरत–पयोधी' तो इस जलनिधि से भी गंभीर है। क्योंकि–

यह जलनिधि खन्यों, मथ्यों, लँध्यो, बाँध्यों अँचयों है।
तुलसीदास रघुवीर बंधु–महिमा को सिंधु तरि, को कवि पार गयों है?"

– (गी. 6/11)

भाई की परिभाषा करते हुए शास्त्रकारों ने ठीक ही कहा है कि :–

"गर्भात् संहरते दुग्धं, स्नेहो हरति जन्मतः ।
वृद्धे तु हरते वित्तं, नहि बन्धु–समो रिपुः ।।"

भाई गर्भ में आते ही सबसे पहले अपने बड़े भाई का मातृ–दूध छुड़ा देगा। फिर जन्म

लेने के बाद बडे भाई के प्रति माँ का लाड़–प्यार भी कम कर देगा। क्योंकि नवजात –छोटे के प्रति अधिक स्नेह होना स्वाभाविक है। फिर बड़ा होने पर धन में से भी हिस्सा मांगेगा। अतः 'न हि बन्धु–समो रिपुः' भाई के समान कोई शत्रु नहीं ।

आज का भाई तो उससे भी दो कदम आगे निकल गया । कौड़ी–कौड़ी के लिए मरने–मारने को उतारू हो जायेगा । कोर्ट–कचहरी में वकीलों में भले ही दुगना धन खर्च हो जाये, इसकी चिन्ता नहीं । लेकिन सहोदर भाई को कौड़ी न मिल जाय। किन्तु भरतलालजी ने तो भाई की परिभाषा ही बदल दी । जिस अवध–राज की सम्पत्ति को देखकर सुरपति इन्द्र व कुबेर भी स्पृहा करें–

अवधराज सुर राजु सिंहाई। दशरथ धन सुनि धनद लजाई।।

लेकिन भरतलालजी उसी राज को गेन्द बना कर रामजी की ओर फेंक रहे हैं और रामजी भरत की ओर । कोई उसे उठाने को तैयार नहीं ।

"राम भरत में आज छिड़ गई, सहसा एक लड़ाई ।
चौदह बरस लड़ेगें दोनों, चलो देखने भाई ।।
एक ओर है राम दूसरी ओर, भरत व्रत – धारी ।
अवध राज–सा गेन्द बना, दोनों ने ठोकर मारी ।।

इतना ही नहीं, भगवान राम के द्वारा भरत के लिए राज छोडकर वन में चले जाने पर भरतजी नंगे–पैर भगवान को मनाने जा रहे है –

बन सिय रामु समुझि मन माहीं। सानुज भरत पयादे जाही।।

भरतजी को पैदल चलते देख सेवकों ने उन्हें रथा–रूढ होने का निवेदन किया तो भरतलालजी ने उन्हे डाँटते हुए कहा– जब भगवान राम स्वयं पैदल वन गए है । तब मुझ सेवक को पैदल पाँव से चलने का भी क्या अधिकार हैं–

"सिर–भर जाउँ उचित अस मोरा। सबते सेवक धरम कठोरा।।"

परन्तु भगवान राम ने कृपा कर कहा कि सिर के बल तुमको चलने की जरूरत नहीं । तुम्हारे अवलम्बन के लिए सिर के बल तो मेरी पादुका जायेगी, सो–

"प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही।।"

अयोध्या लौटकर भी राज का उपभोग स्वीकार नहीं किया । उन्होंने कहा कि जब भगवान राम भी भूमि पर वास करते है । कन्द–मूल–फल खा रहे है तो मुझे उसको भी पाने का क्या अधिकार है? अतः **'महि खनि कुस सांथरी सँवारी'** भूमि खोदकर नीचे पर्णकुटिर ही नहीं बनाई। बल्कि भोजन के लिए भागवत के अनुसार–

गोमूत्र – यावकं श्रुत्वा भ्रातरं वल्कलाम्बरम् । (भा. 9/10/34)

गोबर में से जौ के दाने चुनकर उन्हे गौमूत्र में भीगाकर क्षुधापूर्ति से उन्होने जो कठोर तपस्या की, कि निर्णायकों ने राम–भरत दोनों की तपस्या को कसौटी पर कसकर निर्णय दिया–

लखन राम सिय कानन बसहि । भरत भवन बसि तप तन कसहि ।।
दोऊँ दिसि सभुझि कहत सब लोगू । सब विधि भरत सराहन जोगू ।।

श्री भरतलालजी का तो जीवन लक्ष्य कुछ विचित्र ही था । यों तो भगवान् राम–लक्ष्मण–भरत–शत्रुघ्न चारों हीं भाईयों का जीवन–लक्ष्य भिन्न–भिन्न था। भगवान् राम का लक्ष्य जहाँ **सामान्य–धर्म** मर्यादा–रक्षण था। यथा– ***मातृ देवो भव। पितृ देवो भव।*** माता–पिता की आज्ञा पुत्र का धर्म है। भगवान् राम उस पर आरूढ़ रहे–

'पितुर्नियोगा–दहमागतो वनं, न वत्स दर्पान्न भयाद् ब्रवीमि ते।'

(रघुवंश महाकाव्य)

लेकिन लक्ष्मणजी सामान्य नहीं **विशेष–धर्म** के प्रतिपादक रहे। उन्होने अपने पितृ–तुल्य अग्रज भगवान् राम को ही अपना स्वामी मान लिया– ***'मोरे सबहि एक तुम स्वामी'*** और उस स्वामी–सेवा में बाधा डालने वाले किसी को भी मानने को तैयार नहीं– ***"गुरु पितु मातु न जानहु काहू"।***

किन्तु भरतलालजी ने तो स्वामी की सेवा से भी अधिक उनकी आज्ञा को महत्त्व देकर **विशेषतर–धर्म** अपनाया– ***"आज्ञा–सम न सुसाहिब सेवा"।*** परन्तु शत्रुघ्नजी का **विशेषतम–सिद्धान्त** उन सबसे भिन्न था । वे अपने

माता–पिता या प्रभु या उनकी आज्ञा में नहीं बल्कि– ***"राम ते अधिक राम कर दासा"*** के अनुसार भगवान् राम के आज्ञा–पालक श्री भरतजी की ही अहर्निश–सेवा मे लगे रहे। इस प्रकार भरतजी ने प्रभु की अनुपस्थिति में उनकी चरण–पादुका को ही राज–सिंहासन पर रख कर उन्हीं की आज्ञानुसार शासन–संचालन कर भातृत्व–प्रेम के इतिहास में एक स्वर्णिम–अध्याय अंकित कर दिया ।

यह विश्व अशान्ति के चाहे जितने साधन जुटा लें । लेकिन शान्ति पाने के लिए उसे भारत की ही शरण में आना पड़ेगा। हिमालय की कन्दराओं में तपस्यारत उन सिद्ध–महापुरूषों के पास! जैसा कि औपनिषद् श्रुति–भगवती ने आदेश दिया है–

"तद् विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभि–गच्छेत्, समित्पाणिः ब्रह्मविद् गुरुं श्रोत्रियं ब्रह्म–निष्ठम्।" वेद भगवान् ने आगे कहा कि– ***'नान्यपन्था विद्यतेऽयनाय'*** और छूटने का कोई रास्ता भी नहीं है । धर्म की ही शरण में आना पडेगा । इसीलिए महात्मा–बुद्ध ने कहा कि –

'धम्मं सरणं गच्छामि। संघं सरणं गच्छामि।'

भरत जैसे महापुरूषों की शरण में जाओ। शान्ति मिलेगी। विश्व–बन्धुत्व का एक नया अध्याय जुडेगा। पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आयेगा । अद्यतन अशान्त–विश्व ही बदल जायेगा ।



शिव समान प्रिय मोंहि न दूजा

गोस्वामी तुलसीदासजी रामचरित–मानस को प्रारम्भ करने से पहले शिव–चरित्र का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि–

दोहा :– प्रथमहि मैं कहि शिव–चरित, बूझा मरम तुम्हार।
शुचि सेवक तुम राम के, रहित समस्त विकार।।

गोस्वामी तुलसीदास जी कहते है कि भगवान् भूत भावन भोलेनाथ शंकर बाबा भगवान् राम के परम स्नेहियों में हैं। रामेश्वर–स्थापना प्रसंग में कहा हैं कि–

लिंग थापि विधिवत करि पूजा। शिव समान प्रिय मोहि न दूजा।।
शिव द्रोहि मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुं मोहि न पावा।।
शंकर विमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ मति थोरी ।।

दोहा– शंकर–प्रिय मम द्रोही, शिव–द्रोही मम दास।
ते नर करहि कलप भरि, घोर नरक महूँ वास।।

भगवान् शंकर भगवान् राम को अत्यन्त प्रिय हैं। इसीलिए श्रीमद् भागवत में कहा हैं–

वैष्णवानाम् यथा शम्भुः, पुराणानाम् इदं तथा ।

अर्थात् पुराणों में सर्व श्रेष्ठ श्रीमद्भागवत हैं और वैष्णवों में सर्वश्रेष्ठ भगवान शिवजी हैं। तभी शंकरजी भगवान राम की प्रमुख पांचों लीलाओं में दर्शनार्थ आये हैं । भगवान् राम की प्रमुख पाँच लीलाऐं ये हुई हैं–

1. बाल–लीला 2. विवाह–लीला 3. वनवास–लीला
4. युद्ध–लीला और 5. राज्याभिषेक–लीला

"बाल–लीला"

आप सभी पांचों लीलाओं में देखेंगे कि भगवान् शंकर अवश्य आये हैं। पहले हम बाल–लीला को लेते हैं । उसमें स्वयं भगवान् शंकर अपने मुखारविन्द से राम–कथा सुनाते हुए भगवती पार्वती जी से कहते हैं कि–

औरहुँ एक कहहुँ निज चोरी। सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी।।
काग–भुसुंडि संग हम दोऊ। मनुज रूप जानहिं नहिं कोऊ ।।
परमानन्द प्रेम–रस फूले। वीथिन्ह फिरहि मगन मन भूले।।

भगवान् शंकर भगवान् राम के हर अवतार में बाल–लीला देखने के लिए जाते हैं । हर बार की तरह जाने लगे तो काक–भुसुंडि जी भी साथ में रवाना हो गए और जब भगवान् शंकर अयोध्या में पहुँचते हैं तो वहां पर इतनी भंयकर भीड़ थी कि पैर रखने की भी जगह नही मिली । जब आज भी इतनी भंयकर भीड़ अयोध्या में राम–नवमीं के दिन लगती हैं कि वहां पर 10–15 लाख लोग इकट्ठा हो जाते है तो उस समय की क्या कल्पना करें!

भगवान शंकर धक्का खाते–खाते किसी प्रकार राज–महल पहुंचे तो भारी भीड़ राज–महल में प्रवेश कर रही थी। औरतें तो सब अन्तःपुर में घुसी जा रही थी, लेकिन पुरूषों को कौन अन्दर जाने देता !भगवान शंकर को द्वार पर खड़ी दासियों ने रोक दिया । भगवान शंकर ने कहा कि अरे देवि, घर में लाला भया हैं । हमकों भी तो दर्शन करा दो। तो दासी ने कहा कि 'ये तुम्हारा मुंह और ये मशूर की दाल' ये लाला का दर्शन करेगा! पहले जाओ सरजु में मुंह धोकर के आओं। काक भुशुंडिजी ने कहा– ये लीला आप की यहां चलने वाली नही हैं । काक भुशुंडि जी ने भगवान् शंकर के कान में कुछ कहा और भगवान् शंकर ज्योतिषी बन गए–

"बड़ा धोता बड़ा पोथा, पंडिता पगड़ा बड़ा ।"

और इस प्रकार ज्योतिषी का स्वरूप बनाकर भगवान शंकर अपनी दुकान खोल करके महल के बाहर ऊँचे आसन पर बैठ गए । इतने में एक दूसरी दासी महल के अन्तःपुर से बाहर आयी । तब काक भुशुंडिजी ने तुरन्त दासी का हाथ देखकर के कहा – अरे! तुम्हारें हाथ में तो बड़ी–बड़ी सुन्दर रेखाएं हैं । तुम्हारे 4 लड़के होगें। तीन लड़कियां होगी। बड़े सुन्दर मकान बनेगें और रानी की तरह रहोगी । बस, औरतो का तो ये सुनना क्या कि गहनें–पैसे फेंककर के सब लुटा दें! दासी ने तुरन्त हार उतार कर काक–भुशुंडि जी को दक्षिणा में दे दिया और

भागी–भागी माँ कौशल्या के पास आयी और बोली कि माँजी, बहुत बडे ज्योतिषी आये हैं। अपने लाला का हाथ दिखवाईये । माँ कौशल्या ने कहा– पूछो, कहां के ज्योतिषी है? उसने जाकर पूछा– आपका नाम क्या हैं ?, कहां से आए है ?

अब भगवान् शंकर घबराए कि आज झूठ बोलना पड़ेगा। लेकिन तभी मुख से निकल गया– शम्भु पण्डित हमारा नाम हैं । काशी से आए हैं । तब बात बन गयी। दासी कहने लगी– अन्दर चलिए, हमारे लाला का हाथ देख लीजिए। भगवान् चलने लगे। लेकिन काकभुशुंडि जी को दासी ने वहीं रोक दिया। भगवान् शंकर ने ज्योंही पीछे देखा तो काक–भुसुंडि के आंखों से झर–झर आंसुओं की बरसात हो रही थी। काक–भुसुंडि जी कहने लगे कि सारा काम तो हमने बनाया और हमको पीछे ही टरका दिया। भगवान् शंकर ने कहा– अरे दासी! लाला की हस्त–रेखाऐ अभी छोटी –छोटी होगी । मुझे तो इस समय कम दिखता हैं। तब दासी ने कहा– फिर आप यहीं रहिए, आपका चेला अन्दर चलें। तब काक–भुसुंडिजी खुश हो गए। अब रुआंसा होने की बारी शिवजी की थी। तभी बड़ी हिम्मत जुटाकर बोले, ए दासी! ये चेला अभी नया है।

मेरा ये चेला हस्त–रेखा देख कर के बताऐगा और हम उनका फल बताएगे। दासी ने कहा– अच्छा, तब दोनो चलो। अन्दर जब पहुँचे तो माँ कौशल्या अम्बा ने चरण धोकर के सबका सत्कार किया और भगवान् शंकर के सामने लाला रामभद्र को रख दिया। भगवान् शंकर जब उस श्याम–मूरति को देखने लगे तो देखते ही रह गये। माँ कौशल्या ने देखा तो कहा कि ए बाबा! देखते ही रहोगे कि आशीर्वाद भी दोगे? भगवान् शंकर पीछे हटने लगे कि भगवान् राम को आशीर्वाद कैसे दें! लेकिन भगवान् राम भी उनके चरणों मे बार–बार उछलने लगे कि आज मौका हैं । फिर ऐसा मौका कभी नही मिलेगा।

ज्योंही भगवान् राम को वे स्पर्श किए, त्योंही भगवान् शंकर का कपट–वेश छूट गया और काले–काले सर्प फन मारने लगे। उस नंग–धड़ंग रूप को देखते ही दास–दासियाँ सब भागे और अन्तःपुर में कोहराम मच गया। बालक रामभद्र भगवान्

शंकर के चरणों में किलकारियां मार रहे हैं । वहां जाने की और किसी की हिम्मत नही पड़ रही है । कुछ लोग महाराज दशरथजी के पास गए और उन्है सुनाया कि नंग–धड़ंग मदारी के भयानक रूप वाला एक व्यक्ति महल के अन्दर आ गया है और बड़े–बड़े सर्प उसके गले में लटक रहे है । उसके सिर पर भी कुछ चमक रहा हैं। दशरथ जी ने कहा– अरे! घबराओ मत, ये तो हमारे ही परम पूज्य भगवान शंकर जी होगें और आकर के उनका बड़ा सत्कार किया । तब कहीं बात बनी ।

पार्वती जी ने कहा– वह दासी कौन थी जो आपको अन्दर ले गई, आपको पता हैं? तब शंकर जी ने कहा– हमको क्या पता? पार्वती जी ने कहा– वह मैं ही थी जो कपट–वेष बनाकर पहले ही अन्दर घुस गयी थी ! अगर मैं आपको अन्दर नहीं ले जाती तो आप बाहर ही लटकते रहते। तब भगवान् ने कहा कि पार्वती जी! वास्तव में आप ने बड़ा अच्छा किया। नहीं तो हमको बाहर ही भटकना पड़ता। इस प्रकार भगवान शंकर को बाल– लीला देखने के लिए बड़ा जन्त्र–मन्त्र करना पड़ा। क्योंकि "इष्टदेव मम बालक रामा"। इसी प्रकार राम की विवाह–लीला आती हैं ।

"विवाह लीला"

शिव ब्रह्मादिक विबुध बरुथा। चले विमाननि नाना जूथा ।।
प्रेम पुलक तन ह्वदय उछाहु। चले विलोकन राम विवाहु ।।

जनकपुर में ऐसी दिव्य बारात देख करके क्यों किसी को मोह नहीं होगा! जहाँ एक बार देवराज इन्द्र मिथिला नरेश महाराज जनक से मिलने आते है। जनकपुर के बाहर एक सुन्दर महल के द्वार पर सोने की चौकी पर, सोने की बाल्टी, सोने के लोटे से, दातुन करते हुए, मुकुट पहने, राजसी वेश धारी भद्र पुरुष को देखकर वे उन्हें ही महाराज जनक समझकर साक्षात् दण्डवत्–प्रणाम करने लगे– "अभिवादये, देवराज इन्द्रोऽहम्।" यह देखकर वह बेचारा भद्र–पुरुष घबरा गया। उसके हाथ से दातुन–लोटा कहीं गिरा! लड़खड़ाते सम्भल कर बोला– महाराज जनकजी तो अपने महल में रहते हैं। मैं तो उनके नौकर के, नौकर के,

नौकर के, नौकर के, नौकर का डोम हूँ–

जो सम्पदा नीच गृह सोहा। सो बिलोकि सुरनायक मोहा।।

उस सुन्दर विवाह को देखकर ब्रह्माजी भी आश्चर्य में पड़ गये। क्योंकि वहां की कोई भी चीज उन्हें "मेड इन ब्रह्मलोक" की नहीं मिली–

विधिहि भयउ आचरज विशेखी। निज करनी कछु कतहु न देखी।।

एक बच्चे को कभी आलमारी में अपने माँ–बाप की शादी का फोटो–एलबम हाथ लग गया। बड़े ध्यान से एक–एक कर सारे फोटो देखकर रुँआसा माँ से शिकायत कर रहा है कि आप दोनों के इतने सारे सुन्दर–सुन्दर चित्र हैं। किन्तु किसी में भी मेरा एक भी चित्र क्यों नहीं? माँ ने कहा– बेटा, तुझे कैसे समझाऊँ कि माँ–बाप की शादी में बच्चे का चित्र नहीं होता! ऐसा आश्चर्य ब्रह्मादि–देवताओं को होने पर शंकरजी ने उनको धैर्य दिलाया–

दोहा– शिव समुझाए देव सब, जनि आचरज भुलाहु।
हृदय विचारहु धीर धरि, सिय–रघुवीर विवाहु।।

भगवान शंकर ने कहा– यह आपका–हमारा विवाह नहीं हैं। यह तो हमारे माई–बाप भगवान राम–जानकी का विवाह हैं। भगवान राम कौन–से हैं, उसको भी जान लो–

जिन्ह कर नाम लेत जग माही । सकल अमंगल मूल नसाही।।
करतल होहि पदारथ चारी । तेई सियराम कहेऊ कामारी।।
एहि विधि सम्भु सुरन्ह समुझावा। पुनि आगे वर–बसहि चलावा।।

भगवान् शंकर भगवान् राम के परम मित्रों में हैं। जब उन्होने भगवान राम को सुन्दर घोड़े पर सवार देखा तो गद्‌गद् हो गये। भगवान शंकर ही नहीं, अन्य देवता भी मन्त्र–मुग्ध हो गये। कविकुल चूड़ामणि श्री गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज श्री राम चरित मानस में लिखते हैं कि :–

जेहि वर बाजि राम असवारा। तेहि सारदउ न वरनैहु पारा।।
निरखि राम छवि विधि हरषाने। आंठहु नयन जानि पछताने।।

सुर सेनप उर बहुत उछाहु। विधि ते डेवढ़ लोचन लाहु।।
रामहि चितव सुरेस सुजाना। गौतम श्रापु परम हित माना ।।
देव सकल सुरपतिहि सिहाही। आजु पुरंदर सम कोउ नाहि ।।

धन्य हैं, आज इन्द्र को, कि भगवान के दुल्हे स्वरूप को देखने के लिए अपने शरीर में गौतम के श्राप से दिये हुऐ सहस्त्रभग–नेत्रों की भी सराहना कर रहा हैं। शरीर की कुरूपता की कोई चिन्ता नहीं! ठीक ऐसा ही राजा पृथु के साथ में भी हुआ। भगवान ने कहा कि कुछ वरदान मांग लो। तो राजा पृथु ने क्या मांगा ? श्रीकृष्ण द्वैपायन वेदव्यासजी श्रीमद्भागवत में लिखते हैं कि –

"ददातु कर्णायुतमेष मे वरः"

अर्थात् आप देना ही चाहें तो हमारे शरीर में दस हजार कान दे दो। केवल दो कानों से आपकी कथा सुनने से तृप्ति नहीं होती। धन्य हैं पृथु महाराज और इन्द्रादि–देवगण! इसी प्रकार पंचमुख भगवान शंकर भी अपने पन्द्रहों नेत्रों से भगवान के दुल्हे–स्वरूप का आनन्द ले रहे हैं–

संकरू राम रूप अनुरागे। नयन पंच दश अति प्रिय लागे ।।

लोग कहते हैं कि भगवान शंकर का तीसरा नेत्र खुलते ही सामने वाला भस्म हो जाता हैं। फिर यह कैसे सम्भव है कि पाचों मुखों के तीसरे–नेत्रों से भगवान शंकर अनुराग पूर्वक देख रहे हैं। भगवान् राम का स्वरूप ही ऐसा हैं कि जिनके दर्शन मात्र से प्राणी–मात्र की प्रकृति ही बदल जाती हैं, स्वभाव बदल जाता हैं फिर देव–मनुष्यों की तो बात ही क्या? भयंकर विषैले सांप–बिच्छू की यह हालत है कि –

जिन्हहि निरखि मग सांपन बीछी। तजहि विषम विष तामस तीछी।।

तो फिर भगवान् शंकर के बारे में तो कहना ही क्या ! भगवान् शंकर श्री राम–विवाह का अनुराग–पूर्वक आनन्द उठाये।

"वनवास–लीला"

शिवजी एक बार जब अगस्त जी के यहाँ जाते हैं, गोस्वामी जी कहते हैं–

एक बार त्रेता जुग माही। सम्भु गए कुंभज रिषि पाही।।

और जब वहां से लौटने लगे तो इधर भगवान् राम का अवतार हो चुका था–

मुनि सन विदा मांगी त्रिपुरारी। चले भवन संग दच्छ–कुमारी ।।
तेहि अवसर भंजन महि भारा। हरि रघुवंश लीन्ह अवतारा ।।
पिता–वचन तजि राजु उदासी। दंडक वन बिचरत अविनासी ।।

यहां एक शंका होती हैं कि इधर भगवान् शंकर सती के साथ में अगस्त जी के यहाँ से कैलाश लौट रहे हैं और उधर भगवान्–राम का अवतार भी हो चुका है। राम–जन्म, बाल–लीला, विवाह–लीला, राज–रस भंग, वनवास और सीता–हरण होने जा रहा हैं। अर्थात् आधी रामायण हो गयी । क्या शिवजी को रास्ते में 20–25 वर्ष लग गए है !

इसका समाधान यह है कि भगवान् शंकर इस समय देव–शरीर में हैं और मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम इस समय मानव–शरीर में है। यह शास्त्रों में प्रसिद्ध ही हैं कि भगवान् शंकर का एक दिन मनुष्यों के असंख्य वर्षों के बराबर हो जाता है। अतः भगवान् शंकर के लिये एक दिन में ही भगवान् राम की यह लगभग आधी राम–लीला हो गई हैं। इस प्रकार वनवास हो गया। इस समय भगवान् राम दंडक–वन में मुनियों के आश्रम में भ्रमण कर रहे थें और इधर मुनि–अगस्त के आश्रम से लौटते हुए भगवान् शंकर के मन में भगवान् राम के दर्शन करने की उत्कण्ठा थी। गोस्वामी जी लिखते हैं–

दो. हृदय विचारत जात हर, केहि विधि दर्शन होई ।
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु, गए जान सब कोई ।।

सो. संकर उर अति क्षोभ, सती न जानहि मरम सोई ।
तुलसी दर्शन लोभ, मन डरू लोचन लालची।।

चौ. रावण मरण मनुज कर जांचा। प्रभु विधि वचन कीन्ह चह सांचा।।

इधर भगवान् शंकर चिंता–मग्न थे। उधर दसानन रावण ने छल–कपट करके आद्या–शक्ति भगवती जग–जननी–जानकी जी का हरण कर लिया और भगवान् राम ललित–नर–लीला का नाटक करते हुए कहते हैं कि–

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृग नयनी ।।

चिल्लाते, गिरते, रोते हुए वृक्षों, लताओं, पत्तों, पशु–पक्षियों से जानकीजी का पता पूछ रहे हैं। उस नाटक को देखकर गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं–

दो.-- अति विचित्र रघुपति चरित, जानहि परम सुजान ।
ते मति मंद विमोह वस, ह्रदय धरहि कछु आन ।।

लेकिन परम सुजान भगवान् शंकर के बारे में ऐसी बात नही हैं–

संभु समय तेहि रामहि देखा। उपजा हिय अति हरषु विशेषा।।
भरि लोचन छवि सिंधु निहारी। कुसमय ज़ानि न कीन्ह चिन्हारी ।।
जय सच्चिदानन्द जग पावन। अस कहि चलेउ 'मनोज नसावन'।।

'मनोज–नसावन' शब्द से गोस्वामी तुलसीदासजी ने भगवान् शंकर की आगे की काम–दहन लीला का भी संकेत कर दिया जिसका आधार भगवान् श्री राम की लीला के इस दृश्य के कारण भगवती सती की मोह–ग्रस्त मति रही जो वनवास में भगवान् राम को साधारण मनुष्य की तरह स्त्री के वियोग में विलाप करते देखकर मोह भ्रमित हो गयी।

भगवान् की लीला ही ऐसी हैं कि बड़े–बड़े दिग्गज भी मोहित हो जाते हैं। भगवान् की पांच लीलाओं में पांच व्यक्तियों को मोह हो गया। बाल–लीला में काक–भुसुंडिजी को व विवाह–लीला में रमापति भगवान् विष्णु को भी मोह हो गया तथा वनवास–लीला में सती को मोह हो गया। युद्ध–लीला में गरूड़जी को मोह हो गया। राज्याभिषेक–लीला में वशिष्ठ जी को मोह हो गया। इस प्रंसग को विस्तार से आपके सामने और कहीं रखेंगे। इस प्रकार वनवास–लीला में भगवान् राम के दर्शन के लिये आये भगवान् शंकरजी के साथ आयी भगवती सती को मोह हो गया ।

" युद्ध–लीला"

भगवान् राम की ललित युद्ध–लीला में भूत–भावन भूतनाथ भोले नाथ भगवान् शंकर स्वयं अपने मुखारविंद से भगवती जगत्–जननी पार्वतीजी से कहते हैं कि – **हमहु उमा रहे तेइ संगा । देखत राम चरित रन रंगा ।।**

हमने भी आकाश में खड़े होकर ब्रह्मादि देवताओं के साथ राम–रावण युद्ध को देखा। पार्वती जी ने यह बात सुनकर पूछा कि आप युद्ध में किस तरफ थे? रावण की ओर या राम की ओर थे? भगवान् शंकर ने कहा कि पार्वती ! ये मत पूछो कि हम किस तरफ थे ? हम राम की ओर कहेंगे तो तुम कहोगी, आपने अपने प्रिय शिष्य रावण को आपत्ति में छोड़ ही दिया और यदि कहेगें, रावण की ओर तो तुम कहोगी आपने प्रभु राम को छोड़ दिया! पार्वती जी ने कहा, बता तो दो कि किस तरफ थे? भगवान् शंकर ने कहा– तो सुन लो ! मैं था रावण की ओर! पार्वतीजी ने कहा– मैं तो जानती थी। आखिर आप अपने प्रभु राम को छोड़कर रावण की ओर चले गए। तो शंकर जी ने कहा– बात ऐसी नहीं हैं।

कलि पावनावतार, कविकुल चूड़ामणी गोस्वामी श्री तुलसीदासजी महाराज अपने विश्व–वन्द्य ग्रन्थ श्री रामचरित मानस की कथा सांयकाल त्रिलोक–पावनी, त्रिताप–हरणी, पाप–ताप–शाप विनाशिनी, भगवती भागीरथी गंगा के किनारे काशी में अस्सी घाट पर बनी अपनी कुटिया पर नियमित रुप से करते थे। उसे सुनने के लिए श्रोता दूर–दूर से आते थे। एक भक्त गंगा–पार राम–नगर से भी नित्य–प्रति आता था।

एक दिन गोस्वामीजी ने देखा कि वह रामनगर वाला भक्त कथा पूर्णाहुति के बाद भी अकेला वहीं बैठा है। उन्हौंने उत्सुकता से उसे पूछा– क्यों भक्तराज! आज गए नहीं? उसने उदास मन से कहा– गुरुदेव! हमेशा तो कथा समय पर पूर्ण हो जाती थी व मैं नाव से गंगा पार चला जाता था। किन्तु आज कथा में विलम्ब हो जाने से अन्धेरा हो गया। सब नावें तो चली गई, अब मैं गंगा–पार कैसे जाता?

गोस्वामीजी ने कहा– कोई बात नहीं, आज यहीं रह जाओ। अभी आरती के बाद भोग लगेगा, प्रसाद यहीं पा लेना और सोने के लिए जगह की तो कोई कमी नहीं। उसने रुआँसे होकर कहा– नहीं, इच्छा तो घर जाने की ही है। गोस्वामीजी ने उसे बहुत समझाया, किन्तु उसके विशेष आग्रह करने पर वे मन्दिर में गए। ठाकुरजी के चरणों से कुछ उठाया व उसे लाकर भक्त को देते हुए कहा– इसे मुट्ठी में बांधे रखना। जाओ! गंगा पार कर लोगे।

चूंकि, पहले भी उसने गोस्वामीजी के कई चमत्कार देखे थे। अतः डरते–डरते गंगा में उतर गया। उसे लगा कि वह पानी पर नहीं, सपाट–सड़क पर चल रहा है। एक कदम, दो कदम करता हुआ आगे बढ़ता गया। यहाँ तक कि पूरी गंगा पार कर गया। मात्र 10–20 कदम शेष थे कि उसके मन में आया कि देखें तो सही, गोस्वामीजी ने मुट्ठी में क्या दिया है? चन्द्रमा के शीतल–प्रकाश में ज्योंहि उसनं मुट्ठी खोली तो देखा कि एक तुलसी–पत्र पर चन्दन से 'राम' लिखा है।

उसने सोचा कि इसमें कौन बड़ी बात है! एक तुलसी–दल पर 'राम' तो मैं भी लिख दूंगा। बस, इतना मन में आना था कि वह सब चमत्कार काफूर हो गया। वह भक्त गंगा में गोता लगाने लगा। बड़ी मुश्किल से ऊपर आया तो वहीं से चिल्लाया– 'अरे! मेरे 'राम' नहीं, गोस्वामीजी के 'राम' ही अब तो पार लगाये।' इतने में गंगा की एक जोर से लहर आई और उसे किनारे पर पटक दिया।

किसी प्रकार दूसरे दिन सुबह वह अस्सी घाट पहुँचा। गोस्वामीजी के चरण पकड़कर रोने लगा। तुलसीदासजी ने उत्सुकता से पूछा– क्यों? कुशलपूर्वक कल पार तो हो गए न? उसने सारी आप–बीती सुनाकर अपनी करणी के लिए क्षमा मांगते हुए एक प्रश्न पूछा। गोस्वामीजी, यह बताइये कि आपके 'रामजी' व हमारे 'रामजी' में कुछ अन्तर है क्या? तुलसीदासजी ने हँसते हुए कहा– अरे! अन्तर कुछ नहीं। केवल विश्वास की कमी है।

गोस्वामीजी ने कहा– तब तो तुम्हें कल बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। मैं भी क्या करता! तुम कल केवल घर जाने की ही हठ पकड़े हुए था। उसने कहा– उसमें

भी एक कारण था। यदि मैं यहाँ रहता तो रात भर घर की याद सताती। घरवाली ने भोजन कर लिया होगा कि नहीं! बच्चे आपस में लड़ रहे होंगे! ये, वो, नाना प्रकार की परेशानियों को याद करते रात गुजरती। जबकि वहाँ चला गया तो रात भर, गुरुदेव ! आपकी याद आती रही। हम लोगों की संसार–बन्धन में डालने वाली, घर–गृहस्थी की प्रपञ्चमयी–स्मृति से तो आपकी मोक्षदात्री स्मृति अच्छी!

ऐसे ही भगवान् शंकर ने भगवती पार्वती जी से कहा कि युद्ध में यदि मैं राम की तरफ रहता तो दर्शन सामने दुष्ट–रावण के होते। किन्तु रावण की ओर रहने से दर्शन सामने भगवान् श्रीराम के हुए। भगवान् राम तो अन्तर्यामी ठहरे। वह तो हृदय के प्रेम को जानते हैं। इधर रावण भी खुश हो गया कि हमारे गुरू हमारी तरफ हैं।

युद्ध में एक ऐसी भी परिस्थिति हुई कि हारते हुए रावण ने जब माया करके अपने बहुत–से रूप बना लिए–

रघुपति कटक भालु कपि जेते। जहं तंह प्रगट दशानन तेते।।

तब सभी देवताओं ने भाग करके गिरि–कंदराएं सम्हाली–

डरे सकल सुर चले पराई। जय की आस तजहु अब भाई ।।
सब पुर जिते एक दसकंधर। अब बहु भए तकहु गिरिकंदर ।।

ऐसे समय में भी श्री भगवान् शंकर रणभूमि में अटल खड़े रहे–

रहे विरञ्चि संभू मुनि ज्ञानी। जिन–जिन प्रभु महिमा कछु जानी।।

जब प्रभु ने उस माया को एक ही बाण से काटा तो देवता लोग, "जय हो! जय हो!! " पुकारने लगे ।

रघुवीर एकहि तीर कोपि, निमिष महु माया हरी ।
प्रभु देखि हरष–विषाद उर, सुर वदत "जय जय–जय" करी।।

जीते–जी रावण के डर से देवताओं द्वारा स्पष्ट रूप से 'भगवान् राम की जय' बोलने की भी हिम्मत नहीं पड़ रही हैं। केवल 'जय हो! जय हो!!' कहते जा रहे थे। भगवान् शंकर ने धीरे से मुस्कराते हुये पूछा कि किस की जय हो? राम की

या रावण की? देवताओं ने कहा– जो जीते उसी की जय हो।

"रामाय स्वस्ति, रावणाय स्वस्ति"

आखिर में जब रावण मरा तो उसकी ज्योति भगवान् राम के मुखारविंद में समा गई। भगवान् शंकर को बड़ा हर्ष हुआ–

तासु तेज समाव प्रभु आनन। हरषे देखि सम्भु चतुरानन ।।

सब कुछ गंवाँ कर मरते हुए भी रावण ने ठाकुरजी से एक प्रश्न पूछा– 'प्रभु! इस युद्ध में कौन जीता, कौन हारा?' भगवान् राम ने कहा– ' ये तो सब जानते हैं।' रावण ने कहा– नहीं! मैं जीता, आप हारे।' भगवान् ने कहा– कैसे? रावण ने कहा– 'जब तक मैं जिन्दा रहा, मेरी लंका–नगरी में आपको घुसने नहीं दिया। लेकिन आज मैं आपके–हाथों मरने के पुण्य से आपके–देखते आपके दिव्य–साकेत धाम जा रहा हूँ। आपकी हिम्मत हो तो रोक दीजिये–

'हमरे जियत लंक में, पग न धर सके राम।
तुमरे देखत आज हम, जात तुम्हारे धाम।।'

रावण को साकेत–धाम जाते देखकर भगवान् शंकर परम अनन्दित होकर भगवान् राम की स्तुति करने लगे–

मामभिरक्षय रघुकुल नायक। धृत वर चाप रुचिर कर सायक।।
"मोह" महा घन पटल प्रभंजन। "संसय" विपिन अनल सुर रंजन।।

लगता है, शिवजी पिछली वनवास–लीला में रामकथा में संशय से मोह–ग्रस्त सती के प्राण–त्याग के सदमे से अभी उबरे नहीं है। इसीलिए इस स्तुति में उसकी कुछ छाया झलक रही है। इतना ही नहीं अगली राज्याभिषेक–लीला में यहाँ अपना आरक्षण भी करा दिया कि शायद उस समय राजमहल में विशेष भीड़ में जगह मिले या न मिले–

दो.– नाथ जबहि कौशल पुरी, होईहि तिलक तुम्हार।
कृपा सिंधु मैं आउब, देखन चरित उदार।।

"राज्याभिषेक–लीला"

फिर शिवजी राज्याभिषेक–लीला में भी पधारे हैं –

दो.– वैनतेय सुनु संभु तब, आए जहं रघुवीर।
विनय करत गदगद गिरा, पूरित पुलक शरीर।।

और फिर सुन्दर तोटक–छन्द में स्तुति करते हैं–

तोटक–छन्द लक्षणः– "इह तोटक–मम्बुधि–सैः प्रथितम्"।।
जय राम रमा रमनं समनं। भव ताप भयाकुल पाहि जनं।।
सम मानि निरादर आदर ही । सब संत सुखी विचरन्ति महि।।
नहि राग न लोभ न मान मदा। तिन्ह के सम वैभव वा विपदा।।
एहि ते तव सेवक होत मुदा। मुनि त्यागत जोग–मरोष सदा।।

दो.– बार बार वर मांगउ हरषि देहु श्री रंग।
पद सरोज़ 'अनपायनी'– भगती सदा सतसंग।।

एक नये रामायणी जी को पुछा कि ये 'अनपायनी' भक्ति कैसी होती है ? उन्होनें कहा– अरे! अनपायनी यानि बिना पांव वाली– पांव होंगे तो वह वापस चली जाएगी।

एक भक्त ने लक्ष्मीजी की बड़ी सुन्दर मूर्ति बनाई। किन्तु उसके पैर नहीं बनाएं। किसी ने पूछा– ये क्यों? तो जवाब मिला कि लक्ष्मी जी बहुत चंचल है, कहीं टिकती ही नहीं। अतः 'न रहे बांस न बजे बांसुरी', इसीलिए पांव नहीं बनाए। "अनपायनी"– भक्ति, अर्थात्– अविनाशिनी जो कभी समाप्त ही न हों, ऐसी भक्ति की याचना भगवान् शंकर ने रामजी से राज्याभिषेक के अवसर पर की। इस प्रकार शंकरजी भगवान् राम की पांचों लीलाओं में पधारे। तभी तो ठाकुरजी को कहना पड़ा कि– "शिव समान प्रिय मोहि न दूजा।"

–※–※–

वन्दउँ नाम राम रघुवर को

नाम–जप तो सगुण निर्गण ही नहीं विश्व के सभी धर्म–सम्प्रदायों को एक माला सूत्र में पिरो देता हैं। इसी उपासना–पद्धति में सबका मतैक्य हैं। अथर्ववेद भगवान् कहते हैं– 'नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भि–रीमहे ।' इसीलिये गोस्वामी श्री तुलसीदासजी ने अपने विश्ववन्द्य श्री रामचरितमानस में निर्णायक–रूप से लिख दिया हैं–

दो. 'ब्रह्म रामते नाम बड़, वरदायक वरदानी।
रामचरित सतकोटि महँ, लियँ महेश जिय जानी ।।'

यों सैद्धान्तिक रूप से तो भगवान् राम के नाम, रूप, लीला और धाम चारों ही 'सच्चिदानन्द–विग्रह' कहलाते हैं । आपस में कोई किसी से छोटा–बड़ा नही हैं। जैसा कि अगस्त्य–संहिता में कहा गया हैं –

'रामस्य नाम रूपं च लीला धाम परात्परम् ।
एतच्चतुष्टयं नित्यं, सच्चिदानन्द – विग्रहः ।।'

इनमें भी राम–नाम तो मानव–मात्र के लिए सहज सुलभ हैं । यद्यपि कुछ लोग भोगों में ऐसे लिप्त रह जाते हैं कि प्रमाद से कहने लगते हैं, – अभी भजन की जल्दी क्या हैं ? जब बूढ़े हो जायेगें तब खटिया पर पड़े – पड़े भजन ही तो करना हैं, किन्तु इस क्षणिक संसार में निश्चय से कितने लोग बुढ़ापा देख लेने का वादा कर सकते हैं ?

यदि प्रभु को पुष्प चढ़ाना ही हैं तो बुढ़ापे के सड़े–गले पुष्प की बजाय जवानी का ताजा पुष्प चढ़ाना ही बेहतर हैं। अर्थात् जिस समय हमारे हाथ– पैर जवाब दे जायेगें । आँख–कान–नाक–मुँह बहने लगेगें । चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ जायेगी। मुँह पोपला हो जायेगा। उस समय उठने–बैठने की भी मुश्किल हो जायेगी, भजन की कौन कहें ! (इस पर एक भजन देखें इस पुस्तक के पृष्ठ सं. 53 पर)

उसमें भी यह जीवन कितना क्षण–भंगुर हैं, उस पर एक कवि ने ठीक ही कहा हैं –

"क्षण भंगुर जीवन की कलिका,कल प्रातः न जाने खिली न खिली ।
मलयाचल की शुचि शीतल मंद, सुगन्ध समीर मिली न मिली ।।
कलि काल कुठार लिए फिरता, तन नम्र से चोट झिली न झिली ।
'श्रीराम' भजो रि अरि रसना, फिर अन्त समय में हिली न हिली ।।"

अतः प्रभु – प्राप्ति के लिए भजन जब तक शरीर स्वस्थ हैं, तब तक कर लेना चाहिये। भगवान् कोई खिलौना नहीं हैं कि जो हर ऐसे–वैसे व्यक्ति को हँसते–खेलते हुए ही मिल जाये। उसके लिए कठोर साधना की आवश्यकता हैं। उस साधना के लिए बाल्यावस्था से ही दृढ़ अभ्यास प्रारम्भ कर लेना चाहिए। लेकिन अधिकतर लोग उस भ्रमर की तरह मनोरथ ही करते रह जाते हैं कि –

"रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं,
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकजश्रीः ।
इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे,
हा ! हन्त !! हन्त !!! नलिनीं गज उज्जहार ।।"

अर्थात् कमल पर रस–लुब्ध भ्रमर के बैठे–बैठे ही सूर्यास्त होने पर कमल की पंखुडियाँ बन्द होने से वह उसी में कैद हो गया । लेकिन वह पंखुडियों को बेधकर बाहर निकलने की बजाय केवल मनोरथ कर रहा हैं कि आखिर रात्रि जायेगी और पुनः सवेरा होगा । भगवान् भास्कर उदित होंगे और कमल खिलेगा, तब बाहर निकल पड़ूंगा । वह इस प्रकार मनोरथ कर ही रहा था कि तभी कालरूपी एक हाथी ने कमल को तोड़कर भ्रमर सहित उसका भोग लगा दिया ।

आज यही स्थिति कमों–बेशी हम सभी लोगों की हैं कि विभिन्न मनोरथों में खोये हुए जीते–जी मुर्दे की तरह राम–नाम में प्रमाद कर रहे हैं। मुर्दे को मुर्दा भी इसीलिए तो कहते हैं । क्योंकि अर्थी उठने पर जब उसके सभी साथी "रामनाम सत्य हैं" कहते है, पर एक वही व्यक्ति नही कहता जो कि मुर्दा होता हैं । भगवान् भूतनाथ भोले बाबा शंकरजी को तो राम–नाम इतना प्रिय है कि मुर्दे के साथियों की

राम–नाम की ध्वनि सुनकर उन्हीं के साथ हो जाते हैं । और जब तक वह सुनाई देती हैं, तब तक चलते–चलते श्मशान पहुँच जाते हैं। लेकिन लौटते हुए वे 'राम–नाम' की बजाय अब 'तेरी–मेरी' की चर्चा में ही लग जाते हैं –

जब लग गठरी शीस पर रामनाम है सत्त ।
जार–फूंक के घर चले, अमर ज्ञान भव–गत्त ।।

ऐसी स्थिति में भगवान् शंकर कहते हैं कि यदि राम–नाम की धुन मुझे इस शमशान भूमि पर मिले तो यह भी मेरे लिए परम पवित्र–भूमि हैं। यह कहकर वे वहीं समाधि लगा देते हैं । ऐसे राम–नाम का आश्रय कलि–युग में तो विशेष रूप से सबको लेना ही चाहिये । यद्यपि विभिन्न युगों मे मुक्ति के साधन भिन्न–भिन्न हैं । लेकिन इस कराल–कलियुग में तो 'राम–नाम अवलम्बन एकू ।' अन्य कोई उपाय नहीं। जैसा कि परम पूज्य प्रातः स्मरणीय विश्व वन्द्य गोस्वामी श्री तुलसीदासजी महाराज ने श्रीरामचरितमानसजी में कहा कि –

कृतजुग सब जोगी बिग्यानी । करि हरि ध्यान 'तरहिं' भव प्रानी ।।
त्रेताँ बिबिध जग्य नर करहीं । प्रभुहि समर्पि कर्म भव 'तरहीं' ।।
द्वापर करि रघुपति पद पूजा । नर भव 'तरहिं' उपाय न दूजा ।।
कलिजुग केवल हरिगुन गाहा । गावत नर पावहि भव "थाहा" ।।

अन्य युगों में तो ध्यान – यज्ञादि करने के बाद भी भव–सागर को केवल तैर ही सकता हैं । लेकिन कलियुग में तो राम–नाम से भव सागर की थाह ही पा लेगा तो उसमें डूबेगा क्या ? तैरने में तो डूबने का भय हो सकता हैं, किन्तु थाह पा जाने पर कैसा भय !

इसी राम–नाम के प्रभाव से श्रीगणेशजी देवताओं में प्रथम पुज्य हो गये–

'महिमा जासु जान गनराऊ । प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ ।।'



श्री राम भक्त हनुमान

शरीर में जो महत्त्व प्राण का है, वही महत्त्व किसी भी रामायण में श्री हनुमन्त लाल जी महाराज का है। बिना हनुमच्चरित्र के किसी रामायण की कल्पना करना भी दुष्कर–कार्य हैं । तुलसी–साहित्य से लेकर अन्य रामायणों, पुराणों व वेदों तक में अपने–अपने सामर्थ्यानुसार राम भक्त श्री हनुमान जी की महिमा गाई गई हैं। परमानन्दकन्द सच्चिदानन्दघन प्रभु की श्वांस–भूता, श्रुति भगवती हनुमान जी की बाल–लीला का वर्णन करते हुए कहती हैं–

" ममच्चन् ते मघवन् व्यंसो,
निविविध्वाँ अप हनू जघान ।
अधा निविद्ध उत्तरो बभूवाञ्,
छिरो दासस्य सम्पिणग् वधेन ।। (ऋग्वेद 4/18/9)

" अर्थात् – (मघवन्) हे इन्द्र ! (ते) आपके सान्निध्य में (चन्) निश्चित, (ममत्) प्रमाद करते हुए (व्यंसः) विशाल स्कन्ध युक्त (बाल हनुमान आपके ऐरावत को फल मानकर खाने के लिए पकड़ने की इच्छा से आपको) (निविविध्वान्) सताने लगे। (निविद्धः) सताये हुए आपने (अप) अपगमन–उसे हटाने के लिये (हनु) हनु–ठुड्डीपर (वधेन) वज्रसे (जघान) प्रहार किया। (अधा) अथ–तत्पश्चात् (दासस्य) श्रीराम के भावी दास का (शिरः) सिरोऽवयव, हनु ठुड्डी को (सम्पिणग्) तोड़ डाला। (किन्तु पिता वायुदेव के कोप के कारण ब्रह्मादि देवताओं के वरदान से पुनः) (उत्तरो बभूवान्) पहले से अधिक बलवान हो गये ।"

श्री हनुमान जी बलवान ही नही **बुद्धिमतां वरिष्ठम्** बुद्धिमानों मे सर्वश्रेष्ठ भी हैं । आप माता सीता का पता लगाकर जब लंका से लौटते है तो श्री रघुनाथ जी उनसे एक छोटा–सा प्रश्न पूछते हैं –

"कहु कपि रावन पालित लंका। केहि विधि दहेउ दुर्ग अति बंका ।।" (मानंरा)

श्री हनुमान जी ने इसका जो उत्तर दिया, वह उनकी विवेक–बुद्धि का ही परिचय देता हैं। जिनके द्वारा जलाई लंका को स्वयं प्रलयकाल के बादल भी नही बुझा पाते और वे अपनी असफलता को रावण के दरबार में पुकार–पुकार कर कहते हैं–

"जुग–षट् भानु देखे, प्रलय कृसानु देखे,
सेष मुख अनल विलोके बार–बार है।
'तुलसी' सुन्यो न कान सलिल सर्पी समान,
अति अचरज कियो केसरी कुमार है।।" (कवितावली 5/20)

जिन प्रलयकाल के बादलों ने प्रलय के समय अन्तरिक्ष के द्वादशों–आदित्यों की अग्नि, प्रलयकारी भौम–अग्नि व पाताल की प्रलयकारी शेषमुख–अनल को भी देखा है। आज उनकी स्थिति यह हो गई, जैसे – चूहों से ही डर जाने वाला कोई बच्चा चिड़िया–घर में भयंकर शेर की दहाड़ सुनकर डरता हुआ रोते–काँपते किसी प्रकार माँ के पास आकर कहता है कि मैने बड़े–बड़े चूहे देखे हैं, चीते जैसी डरावनी बड़ी–बड़ी आँखे वाली बिल्लियां भी देखी है, भालू जैसे बड़े–वड़े कुत्ते भी देखे हैं, लेकिन इतना भयंकर शेर–जैसा जन्तु तो पहले कभी नही देखा था।

जिस दैत्यराज रावण के आगे *'वेद पढै विधि संभु सभीत, पूजावन रावन से नित आवै'* (क.7/2) उसकी राजधानी लंका को एक विधवा की झोपड़ी की तरह जलाकर भी कैसी निरभिमानता,विनयता से पवनसुत उत्तर दे रहे है–

प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला वचन "विगत अभिमाना"।।

नारदजी से भी प्रभुने ऐसा ही प्रश्न किया था, लेकिन वे उसे सम्भाल नही सके। उनको अभिमान आ ही गया –

'सुनु मुनि मोह होइ मन ताके। ग्यान विराग हदय नही जाके।।
ब्रह्मचरज–व्रत रत मति धीरा। तुम्हहि कि करइ मनोभव पीरा।।
नारद कहेउ "सहित अभिमाना"। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना।।'

पर यहाँ यह बात नहीं । यहाँ तो 'विगत अभिमाना' है । हनुमान जी ने कहा कि वहां मैंने चार काम किये है। आप एक ही क्यों पूछते है ? पूछ रहे है तो चारों पूछिये –

नांधि सिन्धु हाटकपुर जारा । निसिचर गन बधि विपिन उजारा।। (मा.)

प्रभु ने कहा कि अच्छा, ऐसे ही क्रम से काम किया न, जैसा कि तुम बता रहे हो कि पहले समुद्र लांघा, फिर लंका जलाई, तब फिर राक्षसोंको मारा और फिर अशोक वन को नष्ट किया, या फिर ऐसे किया –

'नांधि सिन्धु पुनि विपिन उजारा। निसिचर बधि हाटकपुर जारा।।'

श्री हनुमान जीने कहा – प्रभु ! यदि हमने कुछ किया होता तो हम बताते कि पहले क्या किया और बाद में क्या? पूछिये न अपने सरकार से कि क्या–क्या कैसे किया है! हम तो मात्र इतना कर सकते हैं कि –

'साखा मृग कै बड़ि मनुसाई। साखा ते साखा पर जाई।।'

मैं तो अपने कपि–स्वभाव से एक भवन से दूसरे पर व दूसरे से तीसरे पर उछल रहा था। मुझे क्या पता था कि पीछे पूँछ में आग लग रही है जिससे सारी लंका जल गई।

'ज्ञानिनामग्र–गण्यम्' – ज्ञानियों में अग्रणी हनुमन्त लालजी के विषय में प्रथम परिचय में ही स्वयं प्रभु अपने श्रीमुख से लखन लालजी को कहते है कि –

'नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु–व्याहरतानेन न किञ्चिदप–शब्दितम् ।।' (वा.रा. 4/3/86)

अवश्य ही इन्होने समस्त व्याकरण का कई बार श्रवण किया है, क्योंकि बहुत–सी बाते कहने पर भी इनके मुखसे कोई अशुद्ध शब्द नहीं निकला । इस विषय में माता जानकी जी से भी प्रथम परिचय कम महत्त्व का नहीं है । क्योकि उस समय परिचय में सबसे बडी बाधा यह थी कि वार्ता किस भाषा में की जायँ? श्री हनुमानजी ने सोचा कि इस समय वानर शरीर में श्रेष्ठ संस्कृत भाषामें बात करता हूँ तो जानकी जी मुझे मायावी रावण समझकर अवश्य भयभीत हो जायेगी कि कामरूप रावण ही पुनः वानर शरीर बना के आया है । कोई छोटा–सा वानर देव–वाणी को

कैसे बोल सकता है? हनुमान ने अपनी विवेक–बुद्धि से तुरन्त निर्णय कर दिया कि –

'अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्' (वा. रा. 4/30/19)

अतः इस समय तो मुझे अयोध्या के आस–पास की साधारण जनता द्वारा बोली जाने वाली मानुषी अवधी भाषा में ही बात करनी चाहिए ।

इस निर्णय में एक कारण और था कि हनुमन्त लालजी की लंका यात्रा का अपना एक प्रमुख उद्देश्य यह भी था कि माँ जानकी जी से पुत्रत्व का प्रमाण–पत्र प्राप्त किया जाये। माँ का वात्सल्य प्राप्त करने के लिए आवश्यकता बडी भारी विद्वत्ताकी नहीं बल्कि बालसुलभ तुतलाहट, टूटी–फुटी भाषा की है –

जो बालक कह तोतरि बाता। सुनहि मुदित मन पितु अरू माता।।

और हुआ भी यही कि माँ से पुत्र कहलवा दिया –

अजर–अमर गुन निधि 'सुत' होहू। करहूँ बहुत रघुनायक छोहू।।

उसी समय प्रभु ने हनुमन्त लालजी से एक और प्रश्न किया कि जो जानकी मेरे विरह में एक क्षण भी अयोध्या में जीवित रहना नहीं चाहती थी, वह आज इतने दिनों मेरे विरह में, और वह भी लंका में, जीवित कैसे है –

कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्व–प्रानकी।।

श्री हनुमान् जी ने कहा कि प्रभु! इस प्रश्न का उत्तर तो मैं बाद में दूँगा। पहले मैंने वहाँ कुछ आश्चर्यजनक जो पहेलियाँ देखी थी, कृपा करके उनका उत्तर दे दीजिये कि एक आदमी को कुछ शत्रुओं ने पकड़कर एक कमरे में कैद कर दिया। कपाट भी बन्द कर दिये। बाहर से ताला देकर एक पहरेदार भी बिठा दिया। अब उसके शत्रु उससे कहते हैं कि हिम्मत हो तो बाहर आ जा। प्रभु! क्या शेर को पिंजरे में बंद करके उसकी शक्ति को परखा जाता है?

यदि वह आदमी कमरे से बाहर नहीं निकलता तो क्या उसकी कोई गलती है? प्रभु ने कहा– जब उसको कमरे में बन्द करके कपाट दे दिया गया। ताला लगाकर पहरेदार भी बिठा दिया गया। तब उसकी क्या गलती? 'बुद्धिमतां वरिष्ठम्' श्री हनुमान जी कहते है कि प्रभु! मैं भी तो जानकी जी के विषय में यही

कह रहा हूँ कि –

नाम पाहरू दिवस–निसि, ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद जंत्रित, प्रान जाहि केहि बाट ।।

प्रभु! जानकी जी के शरीर से प्राण तो बाहर जाना ही चाहते हैं, लेकिन क्या करे, आपके निरन्तर ध्यान रूपी कपाट जो लग गये। अपने चरणारविन्दों में नेत्रों को ऐसा लगाया है, जैसे ताला लगा है। उस पर भी दिन–रात आपके नाम–जप का पहरेदार भी खडा कर दिया है। अब भला प्राण किस मार्ग से जाते? आप ही बताईये! प्रभु ने कहा– लेकिन विरहाग्नि है तो उससे शरीर जलता क्यों नहीं?

हनुमान् जी ने कहा– प्रभु! ऐसा ही रास्ते में एक जगह और हो गया कि कुछ राजकर्मचारी एक चोर के झोपड़े को राज–दण्ड स्वरुप जला रहे थे । उतने में तेज बरसात होने लगी और झोपड़ा बुझ गया। बहुत कोशिश की, पर वे सफल नहीं हुए। उधर उनके अधिकारी डाँट रहे थे कि जल्दी से इसको जला क्यों नहीं देते? लेकिन वे बेचारे क्या करें! ऐसा ही जानकी जी के साथ हुआ । प्रभु! सावन–भादों आये तो मैं आपको बताउँ कि माँ जानकी–अम्बा के नयन किस प्रकार मुसलाधार आँसुओ की बरसात कर रहे है–

'नयन स्रवहि जल निज हित लागी। जरै न पाव देह बिरहागी।।'

नयनों का भी इसमें अपना स्वार्थ हैं कि देह जल गयी तो उसका क्या बीतेगा। प्रभु के प्रिय–दर्शनों से तो वञ्चित हमें होना पड़ेगा । अतः वे आँसू–वर्षा से शरीर की रक्षा कर रहें है ।

राज्याभिषेक के बाद एक दिन प्रभु श्री रामचन्द्र जी महाराज श्री हनुमान जी से कहते हैं कि मुझे बड़ा दुःख है कि विभीषण को तो लंकेश का पद दे दिया। सुग्रीव को भी किष्किन्धा का राज–पद दे दिया। लेकिन तुम को अभी तक कोई पद नहीं मिला। श्री हनुमान जी ने तुरन्त प्रभु के पद–कमल पकड़ कर अश्रुपूरित होकर कहा– प्रभु ! मुझको यह पद मिला हैं । यह उस पद का ही तो प्रताप हैं कि श्री

हनुमन्त लाल जी केवल शास्त्रों व मन्दिरों के ही देवता नही, अपितु आज जन–देवता, ग्राम–देवता कहलाते हैं ।

कितने गांवों में श्री सुग्रीव जी व विभीषण जी के मन्दिर बने हैं? यहां तक कि जहां स्वयं श्री रघुनाथ जी का भी मन्दिर हो न हो, श्री हनुमान जी का मन्दिर तो अवश्य होगा । सम्पूर्ण भारत वर्ष में शायद ही कोई ग्राम बचा हों, जहां आपकी मूर्ति न लगी हो । किसी छोटे–से–छोटे गांव में भी पहुँच जाये तो गांव के बाहर छोटे से थाने (चबुतरे) पर सिन्दूर से पुती हुई गढ़ी–अनगढ़ी मूर्ति के रुप में श्री हनुमन्तलाल जी के अवश्य दर्शन हो जायेगें । आपके भक्तों में हिन्दु–मुस्लिम–सिक्ख–ईसाई का भी कोई भेद–भाव नही, ग्राम–देवता जो ठहरे, वे तो सभी ग्रामवासियों के होते हैं ।

यह प्रताप है श्री सीतारामजी के चरण–कमलों की निर्भराभक्ति का । जैसा कि आपके बारे में श्रीमद्भागवतजी में श्रीकृष्ण–द्वैपायन वेद–व्यासजी लिखते हैं–

'किम्पुरुषे वर्षे भगवन्त–मादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं रामं तच्चरण–संनिकर्षाभिरतः परम–भागवतो हनुमान् सह किम्पुरुषै–रविरत–भक्ति–रुपास्ते' (भा. 5/16/1)

'किम्पुरुष–वर्ष में श्रीलक्ष्मणाग्रज, आदिपुरुष, सीताभिराम भगवान् श्रीराम के चरणों की सन्निधि के रसिक परम भागवत श्री हनुमान जी अन्य किम्पुरुषों के साथ अविचल भक्ति भाव से उनकी उपासना करते हैं ।' अतः इसकी फलश्रुति में भी यही निवेदन करूंगा कि श्री सीतारामजी की अविचल भक्ति प्राप्त करने के लिए एकमात्र उपाय **'हनुमद् उपासना'** ही हैं ।



रामचरित मानस विमल

आनन्दकन्द सच्चिदानन्दघन परात्पर प्रभु के विषय में अथर्ववेदीय श्रुति भगवती निर्देश करती है कि –

"सनातन–मेनमाहु–रुताद्य स्यात् पुनर्णवः ।"

अर्थात् ' प्रभु सबसे सनातन–पुरातन है किन्तु आज भी वे नये है' और यही तो उनकी रमणीयता है । क्योंकि –

'क्षणे–क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः ।'

इसमें हमारे पूर्वज ऋषि–मुनि–शास्त्रकारों, कवियों का बड़ा योगदान रहा है। उनकी कृतियों ने जहाँ हमेशा प्रभु के नवीन रमणीय–स्वरूप का अनुभव कराया है, वहीं **'बाँटन वारे के लगे, ज्यों मेहंदी को रंग'**– के नियमानुसार स्वयं उन कवियों को भी अमर कर दिया है।

अकबर के समय के इतिहासकारों के अनुसार उस समय दो ही व्यक्तियों की प्रशस्ति सारे हिन्दुस्तान में एक छोर से दूसरे छोर तक, एक जैसी गाई जा रही थी । उनमें एक है–तात्कालिन बादशाह अकबर व दूसरे है मानस के रचयेता गोस्वामी श्री तुलसीदास जी महाराज ! लेकिन महान् आश्चर्य कि आज अकबर के साम्राज्य–जन्य वे सभी कीर्ति–स्तम्भ गगन–चुम्बी महल, राज–पाट, दरबार सभी ध्वंस्त हो चुके है। लेकिन एक अकिञ्चन सन्त की कृति रामचरितमानस के द्वारा प्रतिष्ठापित उनकी कीर्ति अभी भी 'दिन–दूनी, रात–चौगुनी' फैलती जा रही है। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी और पुरी से पोरबन्दर तक आबाल–वृद्ध व राजमहलों से झुग्गी–झौंपड़ियों तक समवेत रूप में कोई स्वर सुनाई देता है तो वह है– **'श्रीरामचरितमानस'** !

हिन्दुस्तान ही क्यों, विश्व की ऐसी कौनसी भाषा है जिसमें मानस का अनुवाद न हुआ हों। मानस के रूसी–भाषा के महान् अनुवादक वारान्निकोव ने 12

वर्षों की अथक स्वाध्याय–समाधि से जो मानस का सरस पद्यानुवाद किया, उसका एक नास्तिक कहे जाने वाले रूस जैसे देश में भी वह प्रचार हुआ कि देखते ही देखते उसकी लाखों प्रतियाँ हाथों–हाथ बिक गई । इतना ही नही जब वह मरा तो अपनी इच्छानुसार मानस की एक चौपाई को अपने समाधि–स्थल पर लिखा गया। आज भी मास्को जाने वाले भारतीय उसकी समाधि पर उस चौपाई को देखकर गद्गद् हो जाते हैं। वह चौपाई है–

'पर हित सरिस धरम नहीं भाई । पर पीड़ा सम नहीं अधमाई ।।'

वारान्निकोव दिखा गया कि मानस की एक–एक चौपाई में वह शक्ति है कि मात्र उसी को जीवन में उतार लिया जायँ तो उस व्यक्ति का जीवन ही बदल जायें । मानस की प्रशंसा में जो बात रहीम ने कही, वह भी आज के परिप्रेक्ष्य में बड़ी मूल्यवान् है –

'राम चरित मानस विमल, सन्तन जीवन प्रान ।
हिन्दुआन को वेद सम, यवनहि प्रगट कुरान ।।'

रामचरितमानस का महत्त्व उस समय और सहस्त्रों गुणा वृद्धि को प्राप्त कर जाता हैं, जब स्वयं कविकुल चूड़ामणि गोस्वामी श्री तुलसीदासजी महाराज यह कहते हैं कि –

"रचि महेश निज मानस राखा । पाइ सुसमय सिवा सन भाखा ।।
ताते 'रामचरितमानस' वर । धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर ।।"

अर्थात् यह मानस तो भूत भावन भोलेनाथ भगवान् शंकरजी द्वारा ही लिखा गया है। मैने तो भाषा में मात्र उसका अनुवाद किया हैं । अतः एव ग्रन्थ समाप्तिपर ग्रन्थ–कर्ता के रूप में नाम उनका नही, बल्कि भगवान शंकर का ही है। गोस्वामी जी के हस्ताक्षर तो अनुवादक के रूप में ही मिलते हैं –

'यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम् ।
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् ।।'

गोस्वामी तुलसीदास जी की चौपाईयों मे इतना गूढ–तत्त्व भरा है कि उन्हें समझने के लिये कठिन साधना करनी होगी ।

शिव के धनुष को तोड़ने के लिए जहां सभी लोग अपने कुछ न कुछ निहित स्वार्थ के कारण व्याकुल हो रहे थे। लेकिन उनकी अधीरता धनुष तोड़ न पाई। किन्तु भगवान श्री राम ने इस कार्य में जिस धैर्य का परिचय दिया कि –

"लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े । काहु न लखा देख सब ठाढ़े ।।
तेहि छन राम 'मध्य' धनु तोरा। भरे भुवन घुनि घोर कठोरा ।।"

यहां एक ही **'मध्य'** शब्द को विभिन्न भावों से लिया जा सकता हैं। जैसे– 1. परशुराम, भगवान् राम और बलराम में से **'मध्य राम'** ने धनुष तोड़ा। 2. देंव, भू और पाताल लोकों में से **'मध्य लोक'** में धनुष तोड़ा । 3. सारंग, पिनाक और गाँडीव; कृत, त्रेता व द्वापर के तीनों युगों के तीन मुख्य धनुषों में से मध्य त्रेता युग में, **'मध्य पिनाक धनुष'** तोडा । 4. विधि–हरि–हर त्रिदेवों में से **'मध्य देव'** हरि के प्रतीक राम ने धनुष तोड़ा । 5. लेत–चढ़ावत–खैंचत के **'मध्य छन'** में ही धनुष तोड़ दिया कि कोई देख न पाया । 6. धनुप को **ठीक** मध्य में से तोड़ा कि कोई यह न कहे कि किनारों पर पतला था। 7. प्रातः,मध्यान्ह और सायं में से **'मध्यान्ह समय'** में धनुष तोड़ा।

जो मोहि राम लागते मीठे

औपनिषद श्रुति भगवती **'रसो वै सः'** स्पष्ट रूप से प्रभु के स्वरूप को रसस्वरूप ही स्वीकार करती हैं । इसीलिए तो पूज्यवाद श्री गोस्वामीजी ने अपने राम चरित मानसजी के सातों काण्डों के मंगलाचरण के आद्य–श्लोकों को मगण से प्रारम्भ किया हैं । चूंकि छन्दशास्त्र में मगण (तीनों गुरू अक्षर) रस स्वरूप हैं । भजन

करते हुए जब रसानुभूति होने लगे तो समझना चाहिए कि प्रभु का साक्षात्कार हो रहा है। गोस्वामीजी तो कहते हैं –

जौ मोहि राम लागते मीठे।
तौ षटरस, नवरस, रस अनरस, होई जाते सब सीठे ।। जो मोहि.

राम रस की तुलना में पाक–शास्त्रियों के तिक्तादि षट्रस व साहित्यकारों के श्रृंगारादि नवरस भी अनरस हो जाते हैं । यहां रामरस हमारी साधुकड़ी बोली का राम–रस अर्थात् नमक नहीं है । परन्तु वह भगवद्–रस हैं। सन्त–महात्मा तो व्यवहार के अधिकाधिक शब्दों के साथ राम–शब्द जोड़कर उसका अपने प्रभु से सम्बन्ध बना लेते हैं । जैसेः– राम–रोटी, राम–कढ़ी, राम–रस, राम–लड्डू, राम–चकोरा आदि ।

गो. तुलसीदासजी श्रीरामचरितमानसजी को रसस्वरूप मगण और उसमें भी 'वकार' से आरम्भ करते हुए लिखते हैं –

व–र्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि ।
मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणी–विनायकौ ।।

वाणी–विनायक की वन्दना के रूप में जहां ग्रन्थ को 'व' कार से प्रारम्भ किया गया हैं, वहीं ग्रन्थ को 'वकार' पर ही विराम देकर गोस्वामीजी ने इसे एक रहस्यमय ग्रन्थ बना दिया है। समाप्ति पर आप लिखते हैं –

श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये।
ते संसार–पतंग–घोर–किरणैर्दह्यन्ति नो मान–वाः ।।

इस प्रकार वकार पर ही ग्रन्थ आरम्भ और समाप्त कर इसको आद्यन्त एक स्वरूप बना दिया है। मानस में ही क्या सारे शास्त्रों का यही सिद्धान्त है कि जो आदि में होता हैं, वही अन्त में होता है, और जो आद्यन्त होता है वही मध्य में होता है। मानसजी के परिचय में वहीं एक जगह लिखा भी जाता है–

'एहि महँ आदि मध्य अवसाना । प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ।।'

आद्यन्त एक–स्वरूप का सिद्धान्त मानसजी में ही नही श्रीमद्भागवतजी में भी श्रीकृष्ण द्वैपायन भगवान् वेद–व्यासजी ने ही स्थापित कर लिया था। प्रथम स्कन्ध के पहले श्लोक में आप लिखते हैं–

'जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतः .... "सत्यं परं धीमहि "।

और अन्त में द्वादश स्कन्ध के 13/19 श्लोकान्त में भी –

'कस्मै येन विभासितोऽयमतुलः .... "सत्यं परं धीमहि"

इस प्रकार **'सत्यं परं धीमहि'** से ग्रन्थ को प्रारम्भ कर **'सत्यं परं धीमहि'** पर ही विराम दिया गया। वास्तव में सत्य–स्वरूप परब्रह्म ही तो भागवतजी का सिद्धान्त है जिसको कि ग्रन्थ में आद्यन्त एक समान दिखाया गया हैं । ठीक ऐसे ही श्रीमद्भगवद् गीता को **'धर्मक्षेत्रे–कुरुक्षेत्रे'** के **"धर्म"** से प्रारम्भ कर **'सर्वधर्मान्परित्यज्य' (18/66)** में धर्मपर ही विराम दिया गया ।

अत एव गोस्वामीजी ने सभी शास्त्रों की तरह मानस जी को **'व' कार** तथा मगण से प्रारम्भ कर रामचरित को रस से सरोबार कर दिया हैं। उस दिव्य–रस को पीते हुए **'पिबत भागवतं रस–मालयम् (भा.)'** के सिद्धान्तानुसार कौन तृप्त हो सकता है ? क्योकि–

राम चरित जे सुनत अघाहि । रस विशेष जाना तिन नाहि (मा.)

अथर्ववेद भगवान् का आदेश है कि मनुष्य की बुद्धि, सद्बुद्धि तो प्रभु के सत्संग में ही बन सकती हैं– **'भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसदि'**। जैसे शरीर को प्रतिदिन भौतिक – खुराक देना आवश्यक है। वैसे ही मस्तिष्क को भी नियमित रूप से आध्यात्मिक–खुराक देना आवश्यक है–

"भाग्योदयेन बहुजन्म–समर्जितेन, सत्संगमेन लभते पुरुषो यदा वै ।"

श्रीमद् भागवत जी के इस सिद्धान्त से तो जन्म–जन्म–जन्म–जन्मांतरों के भाग्य का जब उदय होता है, तभी सत्संग की प्राप्ति हो सकती हैं । लेकिन उसका उपयोग भी

तो सभी नहीं कर सकते हैं। हां, भगवान के भक्त अवश्य सत्संग का उपयोग करते हैं। क्योंकि जब उनके प्रभु स्वयं सर्वज्ञ होते हुए भी सत्संग में नियमित भाग लेते हैं– 'सुनहि राम जद्यपि सब जानहिं'। किन्तु यह बात रावणादि–नास्तिक लोगों के यहां नहीं मिलेगी । वहाँ तो "सपनेहुँ सुनिअ न वेद पुराना"। आज मनुष्य के जीवन में जितने भी सद्गुण या दुर्गुण आते हैं, वे संग के गुण या दोष से ही आते हैं।

इसीलिए गोस्वामीजी भी कुसंग से बिगड़ी हुई को पुनः बनाने के लिए नाम–जप पर जोर देते है–

"बिगड़ी जन्म अनेक की, अबही सुधरे आज।
होंहि राम को नाम जप, तुलसी तज कुसमाज।।"

नरसिंहावतार– मृदूनि कुसुमादपि

आनन्दकन्द सच्चिदानन्दघन परात्पर प्रभु के विषय में अथर्ववेदीय श्रुति–भगवती निर्देश करती हैं कि "व्यापः पुरुषः"। इसी को कलि–पावनावतार कविकुल चूड़ामणि पूज्यवाद गो. श्री तुलसीदास जी ने विश्व वन्द्य श्री रामचरित मानस में यों कहा –

" हरि व्यापक सर्वत्र समाना । प्रेम ते 'प्रकट' होई मैं जाना ।।"

उस व्यापक परात्पर पुरुष को वास्तव में "भये प्रकट कृपाला" कहीं कहा जाय तो वह "नरसिंह" रूप में ही, शेष जगह तो "अवतार" ही हुआ है। श्री कृष्ण द्वैपायन वेद–व्यास भगवान् बादरायण तो श्रीमद् भागवत में नृसिंहावतार का हेतु मात्र एक बाल–भक्त के मुँह से हठात् निकली वाणी को सत्य करना ही मानते हैं–

"सत्यं विधातुं निज–भृत्य–भाषितं, व्याप्तिं च लोकेष्वखिलेषु चात्मनः ।

अदृश्यतात्यद्भुत–रूप–मुद्वहन्, स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ।।"(भा.)

किन्तु गोस्वामी जी को किसी ने चुनौती दी कि आप लोगों ने मूर्ति – पूजा कब से शुरू कर दी ? क्या हैं कोई आपके पास इसका प्रमाण ? तब गोस्वामी जी भी कहां चूकने वाले थे ! कवितावली में दे दिया इसका हाजिर जवाब –

" काढ़ी कृपान कृपा न कहुँ, पितु काल कराल विलोकि न भागे,
राम कहां ? सब ठाँव में ! खम्भ् में ? हाँ सुनि हाँक नृकेहरि जागे ।
बैरि बिदारी भये विकराल, कहे प्रह्लादहि कै अनुरागें,
प्रीति प्रतीति बढ़ी तुलसी, 'तब से' सब पाहन पूजन लागे ।।

यह भक्तराज प्रह्लाद पर अनुराग ही था । अन्यथा ब्रह्मादि देवाधिदेव एवं स्वयं लक्ष्मीजी भी प्रभु के इस अभूतपूर्व क्रोध को जब शान्त न कर पायीं और अन्ततः सब बाल भक्त प्रह्लाद की ही शरण में गए । भक्त प्रह्लाद के मात्र करबद्ध प्रणिपात से ही भगवान् का वात्सल्य–प्रेम उमड़ आया । जबकि वृत्रासुर के हजार चाहने पर भी नहीं कि –

" अजातपक्षा इव मातरं खगाः, स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः ।" (भा0)

अर्थात् बिना पंख आये पक्षियों या भूखे–प्यासे बछड़ों द्वारा अपनी माताओं की तरह, हे प्रभो! मैं आपको देखना चाहता हूँ। किन्तु यहाँ एक तरफ क्रोधावतार भगवान् नृसिंह और दूसरी तरफ एक अबोध बालक भक्तराज – प्रह्लाद के मिलन की क्या ही अद्भुत झांकी है! भक्त–वत्सल भगवान् का एक बालभक्त को अभयदान ही इसमें द्रष्टव्य है।

जैसा कि शास्त्रों में कहा गया है– **"वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि"** अर्थात्– वज्र से भी कठोर एवं पुष्प से भी कोमल–स्वभाव प्रभु कब, क्यों धारण कर लेते हैं? कुछ कहा नहीं जा सकता! तभी तो विदाई के समय अंगदजी के **"नीचि टहल गृह कै सब करिहऊँ"** के आग्रह को भी ठाकुरजी ने स्वीकार नहीं किया। यह देखकर गोस्वामी जी को कहना पड़ा–

दो. कुलिसहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेश राम कर, समुझि परइ कहु काहि।। (मा./उ./19 ग)

इसी प्रकार भगवान् राम और कृष्ण के जीवन में यदि हमारी खोजी आँखें, लग जाये तो उनमें बहुत कुछ साम्य पा सकती हैं। जहां भ. राम राक्षसों के वध को निकले तो पहला श्रीगणेश अवध्य–स्त्री 'ताड़का' से ही किया–

"चले जात मुनि दीन्ह देखाई। सुनि "ताड़का" क्रोध करि धाई।।
एक ही बाण प्राण हर लिन्हा। दीन्ह जानि तेहि निज पद दीन्हा।।"

वही भ. कृष्ण ने अभी छठी का दूध भी नहीं चखा था कि छठी मनाने पहुंच गई 'पूतना' (पूत–ना, यानि 'बांझ की जानै, प्रसव कै पीरा')। उसने तो– 'अहो! बकीयं स्तन–काल–कूटम् (भा.)' हलाहल विष भरे अपने स्तनों को प्रभु के मुख में रख दिया। भ. कृष्ण ने दूध के साथ उसके प्राणों को खींच तो लिया लेकिन कहा कि एक बार भी जिसका स्तन सूंघ लिया, दुग्ध–पान कर लिया, वह तो साक्षात् माँ ही हो गई। अतः जो गति माँ यशोदा को दी, जो गति माँ देवकी को दी, वहीं गति उस पूतना राक्षसी को भी दी। इस प्रकार भगवान् राम और कृष्ण दोनों ने राक्षस–वध का श्रीगणेश अवध्य–स्त्री से ही किया। क्योंकि सांपों से पहले सांपों की माँ को मारना जरूरी है।

"इष्ट देव मम बालक रामा" के एक भक्त की समस्या थी कि वह रव–आयुध–विहीन बाल भ. राम और बाल–कृष्ण के स्वरूपों में अन्तर ही नहीं कर पा रहा था। क्योंकि दोनों ही श्याम एक जैसे थे। किन्तु एक कवि ने बड़ी सुन्दर तरकीब बता दी –

'नन्द–नन्दन दशरथ–सुवन रूप–रंग–रब एक।
इनके दृग गंभीर हैं, उनके चपल विशेख।।

वास्तव में उनकी ऑखों की चपलता और गंभीरता के अलावा उनके शरीर में भेद कर पाना मुश्किल है।

श्री राम–जन्मोत्सव में जब **'मास दिवस कर दिवस भा'** महीने भर तक सूर्य भगवान् आगे बढ़ने का नाम ही नहीं ले रहे थे। तब किसी प्रकार **'अगर धूप बहु जनि अंधियारी'** का आश्रय लेकर ही रात्रि रानी प्रतीकात्मक आकर प्रभु से इसकी शिकायत करती है। प्रभु ने आश्वासन दिया कि कृष्णावतार में रात्रि को जब जन्म लूँ तब तुम भी वर्ष–दिवस भर रात बन जाना । तुरन्त चन्द्र ने भी यही शिकायत की किन्तु प्रभु का तर्क भी सटीक था कि चूंकि सूर्य वंश में अवतार लिया । अतः सूर्य काल में जन्म लेना भी बुरा नहीं । किन्तु हाँ, कृष्णावतार चन्द्र वंश में लिया जाना है। उस समय चन्द्रकाल (रात्रि) का सदुपयोग करने में मुझे कोई आपत्ति नही । अभी तो मात्र इतना आपका सम्मान हो सकता है कि अपने नाम के साथ आपको संयुक्त कर लूँ – **रामचन्द्र** के रूप में ।

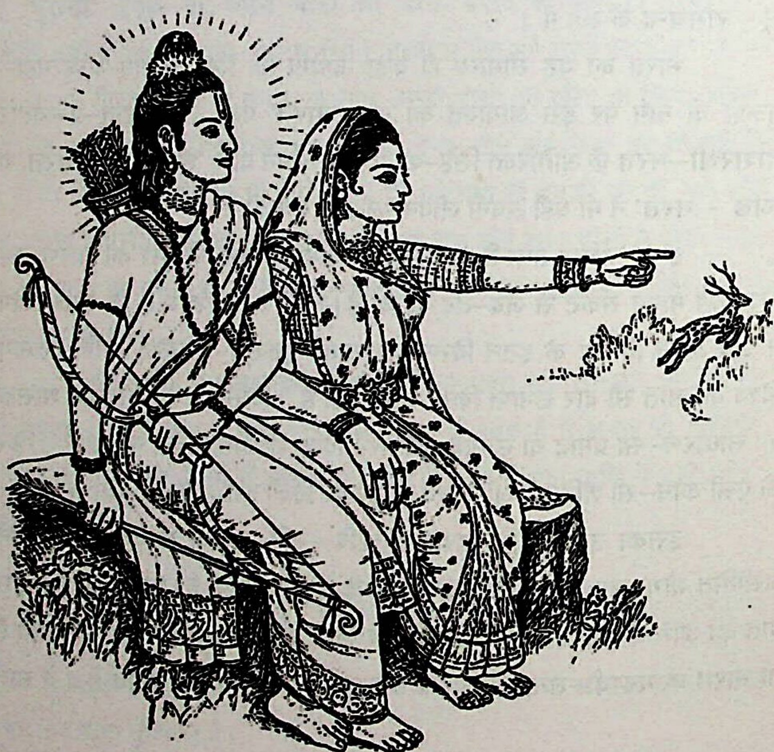
भारत का यह सौभाग्य ही कहा जायेगा कि जिन स्वनाम–धन्य महा–पुरूषों के नाम पर इस आर्यावर्त का नाम 'भारत' पड़ा, उनमें भ्रातृ–प्रेमावतार **दाशरथी–भरत** के अतिरिक्त सिंह–शावकों से खेलने वाले **'शाकुन्तलेय भरत'** व **'जड़ – भरत'** ने भी यहीं अपनी जीवन–लीलाएं पूर्ण की ।

इनके वंशज तपस्वी–मनस्वियों ने अभी भी धर्म की धूरी को धारण कर विश्व को महान् संकट से जब–तब बचाया है। लोगों को आश्चर्य है कि आज विश्व ने जब अपने विनाश के इतने विस्फोटक साधन इकट्ठे कर लिए हैं कि वर्तमान विश्व को सात सौ बार समाप्त किया जा सकता है । किसी भी वैज्ञानिक या शासक का साधारण–सा प्रमाद या उन्माद क्षण भरमें विश्व का विनाश कर सकता हैं । फिर भी ऐसी कौन–सी शक्ति है जो बारूद के ढ़ेर पर टिकी इस पृथ्वी को बचा रही है ।

इसका उत्तर है कि भारत के ऋषि –मुनि–तपस्वी योगियों ने ही अपने असीमित योग, जप, तप के बलपर इस पृथ्वी को बचा रखा है। यदि वैज्ञानिक इस बात का अभिमान करें कि हम सात सौ बार पृथ्वी को समाप्त करने का बल रखते हैं तो भारत के मनस्वी–सन्त–महापुरूष उसे पुनः ज़िलाने का बल रखते हैं । वे सात

सौ बार जब–जब पृथ्वी को सामाप्त करेंगे, ये सिद्ध–सन्त उसे सात–सौ बार पुनः जिला देंगें।

किसी को समाप्त करना या मारना बहुत सरल है। कठिन तो है उसको जिलाना। अशान्ति पाना बहुत सरल है। लेकिन शान्ति पाना बहुत कठिन है। अशान्ति पैदा करने को न पुराण कहती है न कुराण! न बाइबिल कहती है न गुरूग्रन्थ! न ईश कहते हैं न ईशा! न अल्ला कहते हैं न अर्हन्! कोई नहीं कहते। यह अशान्ति मानव की विकृति की ही परिणति हैं।



भजनावली

(महाराजश्री के प्रिय भजन)

अब सौंप दिया इस जीवन का

अब सौंप दिया इस जीवन का, सब भार तुम्हारे हाथों में।
है जीत तुम्हारे हाथों में, और हार तुम्हारे हाथों में ।1।
मेरा निश्चय बस एक यही, एक बार तुम्हे पा जाऊं मैं।
अर्पण कर दूँ दुनिया भर का, सब प्यार तुम्हारे हाथों में ।2।
जो जग में रहूं तो ऐसे रहूं, ज्यों जल में कमल का फूल रहे।
मेरे गुण–दोष समर्पित हों, करतार तुम्हारे हाथों में ।3।
यदि मानव का मुझे जन्म मिले, तो तव चरणों का पुजारी बनूं।
इस पूजक की एक–एक रग का, हो तार तुम्हारे हाथों में ।4।
जब–जब संसार का कैदी बनूं, निष्काम भाव से कर्म करूँ।
फिर अन्त समय में प्राण तजूं, भगवान् तुम्हारे हाथों में ।5।
मुझमें तुझमें बस भेद यही, मैं नर हूं तुम नारायण हो।
मैं हूं संसार के हाथों में, संसार तुम्हारे हाथों में ।6।

हे नाथ! अब तो ऐसी दया हो

हे नाथ अब तो ऐसी दया हो, जीवन निरर्थक जाने न पाये।
यह मन न जाने क्या–क्या दिखाये, कुछ बन न पाया मेरे बनाये ।टेर।
संसार में ही आसक्त रहकर, दिन–रात अपने मतलब की कहकर।
सुख के लिए लाखों दुःख सहकर, ये दिन अभी तक यों ही बिताये। ।1। ।

ऐसा जगा दो फिर सो न जाऊं, अपने को निष्काम प्रेमी बनाऊं।
मैं आपको चाहूं और पाऊं, संसार का कुछ भय रह न जाये।।2।।
वह योग्यता दो सत्कर्म कर लूं, अपने हृदय में सद्भाव भर लूं।
नर तन है साधन भवसिंन्धु तर लूँ, ऐसा समय फिर आये न आये।।3।।
प्रभु! हमें निरभिमानी बना दो, दारिद्र हरलो दानी बना दो।
आनन्दमय विज्ञानी बना दो, मैं हूं पथिक यह आशा लगाये।।4।।

कृष्ण गोविन्द गोपाल गाते चलो

कृष्ण गोविन्द गोपाल गाते चलो,
मन को विषयों के विष से हटाते चलो।।
देखना इन्द्रियों के न घोड़े भगें,
रात–दिन इनको संयम के कोड़े लगें।
अपने रथ को सुमारग चलाते चलो। कृष्ण गोविन्द.....।।1।।
नाम जपते रहो काम करते रहो,
पाप की वासनाओं से डरते रहो।
नाम–धन का खजाना बढ़ाते चलो। कृष्ण गोविन्द.....।।2।।
प्राण जाये मगर नाम भूलो नहीं,
दुख में तड़फो नहीं सुख में फूलो नहीं।
प्रेम–भक्ति के आंसू बहाते चलो। कृष्ण गोविन्द.....।।3।।
ध्यान आयेगा उनको कभी न कभी,
भक्त पायेगा प्रभु को कभी न कभी।
ऐसा विश्वास मन में बैठाते चलो। कृष्ण गोविन्द.....।।4।।

तृष्णा नहीं बूढ़ी हुई

थे दांत हाथी दांत सम, मजबूत हिलने लग गये ।
जैसे गिरें छत से कड़ी, एक–एक गिरने लग गये।।
खूंटे गिरें डाढ़ें गिरीं, बत्तीसी सारी गिर गई।
मुख हो गया है पोपला, तृष्णा नहीं बूढी हुई।।1।।

आंखे हुई हैं धुंधली, पढ़ना – पढ़ाना बंद है।
नहीं पास तक का दीखता, अब दृष्टि इतनी मन्द है।।
कुछ भी नहीं अब सूझता, है रात – दिन की हो रही।
आंखें दिखाई आंख ने, तृष्णा नहीं बूढ़ी हुई ।।2।।

अब कान आना–कानि की, ऊँचा सुनाई देय है।
जब जोर से चिल्लाय कोई, बात कुछ सुन लेय है।।
सुनना–सुनाना बन्द है, नहीं आस सुनने की गई।
बहरे हुए हैं कान पर, तृष्णा नहीं बूढ़ी हुई।।3।।

काया गली झुर्री पड़ीं, लोहू हुआ है लापता।
पग डगमगाते चालते, कर कांपते सिर हालता।।
ली हाथ लाठी बांस की, धनु सम कमर है झुक गई।
काया हुई बूढ़ी मगर, तृष्णा नहीं बूढ़ी हुई।।4।।

बेटे–बहू विपरीत हैं, मानें नहीं कोई कहा।
रोटी मिले नहीं वक्त पर, है स्वाद भी जाता रहा।।
बाबा मरा माई मरी, है कूँच पत्नी कर गई।
इज्जत गई लज्जत गई, तृष्णा नहीं बूढ़ी हुई।।5।।

सब इन्द्रियां बलहीन हैं, नहीं देह में सामर्थ्य है।
नहीं खा सके नहीं पी सके, सब भांति से असमर्थ है।।
नहीं हिल सके, नहीं डुल सके, अब खाट तक भी कट गई।
मरना न फिर भी चाहता, तृष्णा नहीं बूढ़ी हुई ।।6।।

पुत्रादि कहते हैं सभी, बुड्ढा बहुत दुख पाय है।
देता हमें भी कष्ट है, मर क्यों नहीं अब जाय है।।
मर जाय अच्छा होय, अब तो कष्ट की हद हो गई।
मरना न फिर भी चाहता, तृष्णा नहीं बूढ़ी हुई।।7।।

बुड्ढा–मरण सब चाहते, बुड्ढा मरा नहीं चाहता।
धन–धाम के कुल–ग्राम के, भोला मनोरथ ठानता।।
वाणी हुई है बन्द, नाहीं देह आसक्ती गई।
मरना न फिर भी चाहता, तृष्णा नहीं बूढ़ी हुई।।8।।

बैठ अकेला दो घड़ी

बैठ अकेला दो घड़ी, कभी तो ईश्वर ध्याया कर,
मन मन्दिर में गाफिला, झाड़ू रोज लगाया कर।। टेर।।

सोने में तो रात गुजारी, दिन भर करता काम रहा।
इसी तरह बरबाद तू बन्दा, करता अपना आप रहा।।
बिस्तर से उठ प्रेमियों की, सत्संगत में जाया कर ।।बैठ अ.।।1।।

बारम्बार मनुष तन पाना, बच्चोंवाला खेल नहीं।
जनम–जनम के शुभ कर्मों का, जब तक होता मेल नहीं।।
नर तन पाने के लिए, अच्छे कर्म कमाया कर ।।बैठ अ.।।2।।

पास तेरे है दुखिया कोई, तूने मौज उड़ायी क्यों?।
भूखा–प्यासा रहा पड़ोसी, तूने रोटी खायी क्यों?।।
पहले सबसे पूछ कर, पीछे भोजन पाया कर।।बैठ अ.।।3।।

देख दया उस परमेश्वर की, जिन वेदों का ज्ञान दिया।
शोक करे क्यों बन्धु पियारे, कितनों का कल्याण किया।।
'रामशरण' प्रभुनाम ले, प्रातः समय उठ ध्याया कर।।बैठ अ.।।4।।

लाठी से पड़ेगा पाला

(बुढ़ापे की दुर्दशा को विचार कर, भोग को छोड़कर योग करो।)

लाठी से पड़ेगा पाला, नाक से बहेगा नाला।
आंख पर तनेगा जाला, जरा–जिन्दगानी में।।टेर।।
खड़े–खड़े कपड़ों में, करोगे मल–मूत्र त्याग।
पड़े – पड़े थूकते, रहोगे पीकदानी में।।1।।
भक्ति क्या करोगे जब, शक्ति न रहेगी तब।
राम–नाम लेने की, तुम्हारी मुख–वाणी में।।2।।
योग करो योग से अरु, भोग से वियोग करो।
कर लो भजन, भगवान का जवानी में।।3।।

कण–कण में है झांकी भगवान की

कण–कण में है झांकी भगवान की, किसी सूझ वाली आंख ने पहचान की।टेर।
नामदेव ने पकाई, रोटी कुत्ते ने उठाई, पीछे घी का कटोरा लिये जा रहे।
बोले रूखी तो न खाओ, थोड़ा घी तो लेते जाओ, रूप अपना क्यों मुझसे छिपा रहे।।
तेरा–मेरा एक नूर, फिर काहे को हजूर, तूने सकल बनाली यह श्वान की।
मुझे ओढ़नी ओढ़ा दी इन्सान की। कण–कण में है झांकी भगवान की।।1।।
निगाह मीरा की निराली, पीके जहर की प्याली, ऐसा गिरधर बसाया हर श्वास में।
आया जब काला नाग, बोली धन्य मेरे भाग, प्रभु आये आज सांप के लिबास में।।
आओ – आओ बलिहार, काले कृष्ण मुरार, बड़ी है कृपा निधान की।
धन्यवादी हूं मैं आपके अहसान की। कण–कण में है झांकी भगवान की।।2।।
इसी तरह सूरदास, निगाह जिनकी थी खास, ऐसा नैनों में नशा था, हरि नाम का।
नैन हुए जब बंद, तब मिला वह आनन्द, आया नजर नजारा घनश्याम का।।
हर जगह वह समाया, सारे जग को बताया, आयी आंखों में रोशनी जब ज्ञान की।
देखीं झूम–झूम झलकियां जहान की। कण–कण में है झांकी भगवान की।।3।।

गुरु नानक कबीर, नहीं जिनकी नजीर, देखा पत्ते पत्ते में भगवान् को।
नजदीक और दूर, वही हाजिर हजूर, यही सार समझाया संसार को।।
"रामशरण" यह जहान,शहर–गांव बियावान,मेहरबानियां हैं उसी मेहरबान की।
सारी चीजें हैं यह, एक ही दुकान की। कण–कण में है झांकी भगवान की।।4।।

मेरे मालिक की दुकान में सब लोगों का खाता

मेरे मालिक की दुकान में, सब लोगों का खाता।
जैसा भी जो है कर्म करे, वैसा ही फल पाता।। मेरे ।।
क्या साधू क्या सन्त–गृहस्थी, क्या राजा क्या रानी।
प्रभु की पुस्तक माहिं लिखी है, सब की कर्म – कहानी।।
मेरे मालिक की दुकान में, सब जीवों का खाता।। 1 ।।

करता है वह न्याय सभी का, ऊँचे आसन डटके।
उसका न्याय कभी नहीं चूके, लाख कोई सिर पटके।।
धर्म का बेड़ा पार करे वह, पाप की नाव डुबाता।
मेरे मालिक की दुकान में, सब जीवों का खाता।।2 ।।

बड़े – बड़े कानून हैं प्रभु के, बड़ी – बड़ी मर्यादा।
किसी को दमड़ी कम नहीं देता, देता न किसी को ज्यादा।।
समझदार तो चुप रह जाता, मूरख शोर मचाता।
मेरे मालिक की दुकान में, सब जीवों का खाता।।3 ।।

'रामशरण' अच्छी करनी कर, कर्म न करना काला।
लाख आंख से देख रहा है, तुझे देखने वाला।।
पुण्य की खेती करो चतुर नर, समय गुजरता जाता।
मेरे मालिक की दुकान में, सब जीवों का खाता।।4 ।।

मैंने मानुष जनम तुझ को हीरा दिया

मैंने मानुष जनम तुझ को हीरा दिया, जो तू विरथा गमाये तो मैं क्या करूँ।
ज्ञान वेदों का मैने प्रथम दे दिया, तू समझ ही न पाया तो मैं क्या करूँ।।टेर।।

अन्न घी–दूध खाने को सब कुछ दिया, मेवा–मिष्ठान भी मैंने पैदा किया।
फिर भी हो निर्दयी जीभ के स्वाद से, तू अगर मांस खाये तो मैं क्या करूँ।।

।। मैने मानुष।। 1 ।।

दीन–दुखियों के दिल को दुखाने लगा, रात–दिन पाप में मन लगाने लगा।
तूने जैसा किया वैसा पाने लगा, आज आंसू बहाये तो मैं क्या करूँ ।।

।। मैने मानुष ।। 2 ।।

नाम मेरा तेरे पापों को काट दे, जो तू पापों के करने से मन डाट दे।
मैं यही चाहता आजा "राम की" शरण, जबकि तू ही न आये तो मैं क्या करूँ।।

।। मैने मानुष ।। 3 ।।

छोड़कर छल–कपट आजा "राम की" शरण, सहज कट जायेगा, तेरा आवागमन।
यदि न माने अपने 'गुरु' के वचन, यों ही चक्कर लगाये तो मैं क्या करूँ।।

।। मैने मानुष ।। 4 ।।



रे मन मुसाफिर निकलना पड़ेगा

रे मन मुसाफिर निकलना पड़ेगा।
काया कुटी खाली करना पड़ेगा ।। टेर।।

भाड़े के क्वाटर को क्या तू संभाले।
जिस दिन तुझे घर का मालिक निकाले।।
इसका किराया भी भरना पड़ेगा ।। काया कुटी ।। 1 ।।

आएगा नोटिस जमानत न होगी ।
पल्ले में गर कुछ अमानत न होगी।।
होकर के कैद तुझको चलना पड़ेगा।
काया कुटी खाली करना पड़ेगा ।। रे मन ।।2 ।।

यमराज की जब अदालत चढ़ोगे।
पूछेगा हाकिम तो क्या तुम कहोगे।।
पापों की अग्नि में जलना पड़ेगा।
काया कुटी खाली करना पड़ेगा ।। रे मन ।।3 ।।

मेरी ना मानो यमराज तो मनायेंगे।
तेरा कर्म–दण्ड तुझे मारकर भोगायेंगे।।
घोर नरक बीच दुःख सहना पड़ेगा।
काया कुटी खाली करना पड़ेगा।। रे मन ।।4 ।।

'रामशरण' कहे फिरेगा तू रोता।
लख चौरासी में खायेगा गोता।।
फिर–फिर जनम और मरना पड़ेगा।
काया कुटी खाली करना पड़ेगा।। रे मन ।।5 ।।



हरि नाम के हीरे–मोती

हरि नाम के हीरे–मोती, मैं बिखराऊँ गली–गली ।
ले लो रे कोई राम का प्यारा, टेर लगाऊँ गली–गली ।। टेर।।
दौलत के दीवानों सुन लो, एक दिन ऐसा आयेगा।
धन–यौवन अरु रूप–खजाना, यहीं धरा रह जायेगा।
सुन्दर काया माटी होगी, चर्चा होगी गली–गली।। हरि।। 1 ।।
मित्र–पियारे सगे–सम्बन्धी एक दिन तुझे भुलायेंगे।
कल तक अपना जो कहते थे, अग्नी पे तुझे सुलायेंगे।
जगत–सराया दो दिन का है, आखिर होगी चली–चली।। हरि।। 2 ।।
जिसको अपना कहकर बन्दे, तू इतना इतराता है।
छोड़ देंगे सभी विपत्ती में, कोई साथ न जाता है।
दो दिन का यह चमन खिला, फिर मुरझायेगी कली–कली।।हरि।। 3 ।।
क्यों करता यह तेरी–मेरी, तज दे इस अभिमान को ।
'रामशरण' सब छोड़ के बन्दे, जपले हरि के नाम को।
ऐसा अवसर फिर न मिलेगा, पछिताये मल तली–तली।।हरि।। 4 ।।

पड़े रहे सब रंगले–बंगले

पड़े रहे सब रंगले–बंगले, खाली बारहदरी रही ।।टेर।।
जोड़–जोड़ कर भरे खजाने, आज भी तृष्णा अड़ी रही।
कहाँ गये बिजली के पंखे, कहां वो रेशम जरी रही।
चले गये सब काल के मुख में, खाली बारहदरी रही।
पड़े रहे सब रंगले–बंगले।। 1 ।।

एक ब्राह्मण की सुनो कहानी, पूजा करने जाता था।
नहाय–धोय कर नदी किनारे, आसन खूब जमाता था।
काल–बली का लगा तमाचा, माला हाथ में पड़ी रही।
पड़े रहे सब रंगले–बंगले।। 2 ।।

बाबूजी एक सैर करन को, गाड़ी पर असवार हुए।
गाड़ी अभी चलने नहीं पाई, बाबू ठण्डे–ठार हुए।
काल–बली का लगा तमाचा, सड़क पे टमटम खड़ी रही।
पड़े रहे सब रंगले–बंगले।। 3 ।।

एक नारी ऊँचे महल पर, चढ़ी श्रृंगार बनाने को।
भरी सलाई सुरमा वाली, सुरमा आंख में पाने को।
काल – बली का लगा तमाचा, सुरमा – दानी पड़ी रही।
पड़े रहे सब रंगले–बंगले।। 4 ।।

पहन पोशाक बांध के पगड़ी, गद्दी ऊपर सेठ गये।
जाते ही एक चक्कर आया, पांव फैलाकर लेट गये।
काल–बली का लगा तमाचा, कलम कान में अड़ी रही।
पड़े रहे सब रंगले–बंगले।। 5 ।।

"रामशरण" अब चेतो प्राणी, झगड़े और फिसाद तजो।
क्या रखा है इन झगड़ों में, मस्त रहो और राम भजो।
लाखों आये लाखों चल गये, खाली बारहदरी रही।
पड़े रहे सब रंगले–बंगले।। 6 ।।



तेरा रामजी करेंगे बेड़ा पार

तेरा रामजी करेंगे बेड़ा पार, उदासी मन काहे को करे।।टेर।।

नैया तेरी राम हवाले, लहर–लहर हरि आप संभाले।

हरि आप ही उठाये तेरा भार, उदासी मन काहे को करे।।तेरा।।1।।

काबू में मझधार उसी के, हाथों में पतवार उसी के।

तेरी हार भी नहीं है, तेरी हार, उदासी मन काहे को करे।।तेरा।।2।।

तू निर्दोष तुझे क्या डर है, पग–पग पर साथी ईश्वर है।

जरा, भावना से करिये पुकार, उदासी मन काहे को करे।।तेरा।।3।।

सहज किनारा मिल जायेगा, परम सहारा मिल जायेगा।

डोरी सौंप के तो देख एक बार, उदासी मन काहे को करे।।तेरा।।4।।

दाता एक रामजी भिखारी सारी दुनियाँ

दाता एक रामजी, भिखारी सारी दुनियां।।टेर।।

निर्धन तो मांगे, मांगे साहूकार।

राजाहू महाराजा मांगे, जिनकी बड़ी–बड़ी रजधनियां।।

।।दाता एक रामजी ।।1 ।।

दुर्जन मांगे, सज्जन मांगे, चतुरा और गंवार।

रोगी, योगी–भोगी मांगे, मांगे ऋषि–मुनि जनियां।।

।।दाता एक रामजी।।2 ।।

हाथ जोड़कर मांगे कोई, दोनों हाथ पसार।

नाच–गाय के मांगे कोई, मन में फेरे सुमिरनियां।।

।।दाता एक रामजी।।3 ।।

देते–देते राम थके ना, मांग–मांग संसार।

बिन मांगे ही सबको दे–दे, भर–पेट भोजन–पनियां।।

।।दाता एक रामजी।।4 ।।

रामायण–अनुष्ठान के प्रयोग की विधि

प्रयोग करने वाले पहले दिन हविस्यान्न दुग्ध–फलाहार का भोजन करके रात्रि में संयम पूर्वक पवित्र स्थान में शुद्ध आसन पर बैठकर स्वस्थ चित्त से श्री हनुमानजी का स्मरण करें, हो सके तो उनके नाम से हवन करें या किष्किन्धा काण्ड का पाठ कर लें। भगवान का स्मरण करते हुए छाती पर हाथ रखकर सोवें, उस समय प्रार्थना करें कि आप कृपा करके मुझे स्पष्ट संकेत कर दीजिये कि मैं अपनी अभिलाषा पूर्ति करने के लिए कौन–सा प्रयोग करूँ? यदि एक दिन में उत्तर न मिले तो तीन दिन लगातार ऐसा करना चाहिए। फिर रामायण का पूर्ण विधि पूर्वक सम्पुट से पाठ करें। मन्त्र सिद्ध करने के लिए रक्षा रेखा खींचनी चाहिए जैसी श्रीलक्ष्मणजी ने गोल–वृत्ताकार रेखा खींची थी–

1. रक्षा रेखा मंत्र–

मामभिरक्षय रघुकुल नायक। धृत वर चाप रुचिर कर सायक।।

2. विपत्ति नाश के लिये–

राजिवनयन धरे धनु सायक। भगत विपति भंजन सुखदायक।।

3. संकट नाश के लिये–

जौं प्रभु दीन दयाल कहावा। आरति हरन वेद जस गावा।।
जपहिं नाम जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी।।
दीन दयाल बिरद सम्भारी। हरहु नाथ मम संकट भारी।।

4. विघ्न नाश के लिये–

सकल विघ्न ब्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपा बिलोकहिं जेही।।

5. खेद नाश के लिये–

जब ते राम ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए।।

6. महामारी हैजा, शीतला आदि का प्रभाव न हो–

जय रघुवंश बनज बन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृशानू।।

7. उपद्रवों तथा विविध रोगों की शान्ति के लिए –

दैहिक दैविक भौतिक तापा।

राम राज नहिं काहुहिं ब्यापा।।

8. मस्तिष्क पीड़ा दूर करने के लिए –

हनूमान अंगद रन गाजे। हाँक सुनत रजनीचर भाजे।।

9. विष का प्रभाव शान्त करने के लिए –

नाम प्रभाव जान शिव नीको। कालकूट फल दीन अमी को।।

10. अकाल मृत्यु निवारण के लिए –

नाम पाहरु दिवस निशि, ध्यान तुमार कपाट।

लोचन निज पद जंत्रित, जाहिं प्रान केहि बाट।।

11. भूत को भगाने के लिये–

प्रनवउँ पवन कुमार, खल बन पावक ग्यान घन।

जासु ह्रदय आगार, बसहिं राम सर चाप धर।।

12. नजर झाड़ने के लिए –

स्याम गौर सुन्दर दोउ जोरी।

निरखहिं छवि जननी तृन तोरी।।

13. खोई हुई वस्तु पुनः प्राप्त करने के लिए –

गई बहोरि गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू।।

14. जीविका प्राप्ति के लिए –

विश्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई।।

15. दारिद्र्य नाश के लिए –

अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के ।
कामद घन दारिद दवारिं के ।।

16. सुख व लक्ष्मी प्राप्ति के लिये–

जिमि सरिता सागर महँ जाहीं । जद्यपि ताहि कामना नाहीं।
तिमिं सुख सम्पत्ति विनहिं बोलाए। धरमसील पहिं जाहिं सुभाए।

17. पुत्र प्राप्ति के लिये–

प्रेम मगन कौसल्या, निशि दिन जात न जान।
सुत सनेह बस माता, बालचरित कर गान।।

18. सम्पत्ति के लिये–

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं।
सुख सम्पत्ति नाना विधि पावहिं।।

19. ऋद्धि सिद्धि प्राप्ति करने के लिये–

साधक नाम जपहिं लय लाए। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाए।

20. मनोरथ सिद्धि के लिये–

भव भेषज रघुनाथ जस, सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन कर सकल मनोरथ, सिद्धि करहिं त्रिसिरारि।।

21. मुकदमा जीतने के लिये–

पवन तनय बल पवन समाना। बुद्धि विवेक विज्ञान निधाना।।

22. शत्रु से मित्रता के लिये–

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई।

गोपद सिन्धु अनल सितलाई।।

23. विवाह के लिए –

तब जनक पाई वशिष्ठ आयसु ब्याह साज सँवारि कै।

माण्डवी श्रुति कीरति उरमिला कुँअरि लई हँकारि कै।।

24. परीक्षा में पास होने के लिये–

जेहि पर कृपा करहिं जन जानी।

कवि उर अजिर नचावहिं बानी।।

25. विद्या प्राप्ति के लिए –

गुरुगृह पढ़न गए रघुराई। अल्पकाल विद्या सब आई।।

26. यात्रा की सफलता के लिये (चलते समय) –

चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई।

चले हृदय अवधहि सिर नाई।।

27. भक्ति प्राप्ति के लिये–

अस अभिमान जाइ जनि भोरे।

मैं सेवक रघुपति पति मोरे।

28. श्रीहनुमानजी को प्रसन्न करने के लिये–

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू।

29. उमाशंकर की प्रसन्नता के लिये–

गुरु–पितु–मातु महेश भवानी। प्रनवउँ दीनबन्धु दिन दानी।।

30. श्रीसीतारामजी के दर्शन के लिये–

नील सरोरुह नील मनि, नील नीरधर श्याम।

लाजहिं तन शोभा निरखि, कोटि कोटि सत काम।।

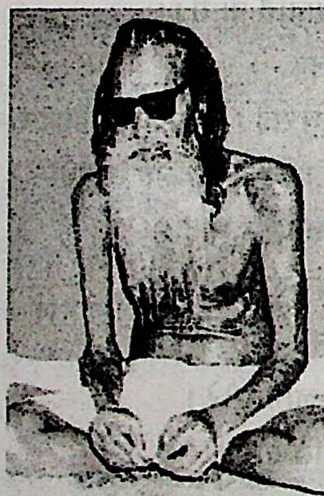
31. वर्षा के लिये–

सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जग जीवन दाता।।

32. गणेशजी की प्रसन्नता के लिये–

जेहि सुमिरत सिद्धि होय, गणनायक करिवर बदन।

करउ अनुग्रह सोय, बुद्धि–राशि शुभ गुन सदन।।



प.पू. श्री हरिदासजी महाराज

पहला सुख निरोगी–काया

"यः स्यात् प्रावरणाविमोचनधिया, साध्यः प्रकृत्या पुनः,
सम्पन्नः सह तेन दीव्यति परे, वैश्वानरे जाग्रति।
ज्ञातो यद्यमरं न वेदयति च, स्वस्मात् स्वयं द्योतते,
यो ब्रह्मैव स दैन्य–संसृति–भयात, पायात् सदा पारदः।।"

श्रीमद् भागवत पुराण में बादरायण श्री कृष्ण द्वैपायन वेद–व्यासजी ने भगवान् धन्वन्तरि की स्तुति में बड़ी सुन्दर बात कही है कि–

धन्वन्तरिश्च भगवान्स्वयमेव कीर्ति,
र्नाम्ना नृणां पुरुभुजां रुज आशु हन्ति ।
यज्ञे च भागममृतायुरवावरुन्ध,
आयुश्च वेदमनु–शास्त्यवतीर्य लोके ।। (भा. 2/7/21)

अर्थात् इस लोक में अवतार लेकर आयुर्वेद–शास्त्र का अनुशासन करने वाले स्वनाम–धन्य भगवान् धन्वन्तरि के नाम से ही बड़े–बड़े रोगियों के रोग नष्ट हो जाते हैं और यह कोई मात्र अर्थवाद नहीं हैं, 'विश्वासः फलदायकः'। हमारे धर्म–शास्त्र विश्वास की धुरी पर टिके है जो कहते है–

'मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे देवज्ञे भेषजे गुरौ ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ।।'

किसी ने आयुर्वेद की तुलना में अन्य शास्त्रों को मात्र बुद्धि–विलास की संज्ञा देते हुए कहा है कि–

अन्यानि शास्त्राणि विनोद–मात्राणि, न तेषु किञ्चिद् वचनीयमस्ति।
चिकित्सितं ज्योतिष–मन्त्रवादाः, पदे पदे प्रत्ययमावहन्ति।।

चिकित्सा–शास्त्र, ज्योतिष व तन्त्र–मन्त्र के ग्रन्थ प्रत्यक्ष–शास्त्रों में आते हैं। क्योंकि चिकित्सा–शास्त्रों में उल्लिखित औषधी को रोगानुसार खाते ही रोग का नष्ट होना उसकी सत्यता का प्रत्यक्षीकरण करा देता है । इसी प्रकार ज्योतिष–शास्त्रानुसार वर्षों पूर्व यह घोषणा कर दी जाती है कि अमुक–दिन अमुक–समय पर सूर्य या चन्द्र–ग्रहण होगा और ठीक उसी समय पर सूर्य–चन्द्र में एक धब्बा दिखाई भी देता है । यह हमारी प्राच्य–भारतीय विद्या के लिए गौरव का विषय है । अन्यथा विज्ञान के लिए तो आज भी यह चुनौति का विषय है कि किस समय, कौन सा ग्रह कहाँ होगा ? कौन किसको आच्छादित करेगा व उसकी ठीक गति क्या है ? विराट् ब्रह्माण्ड में यह आज भी पाश्चात्य–विज्ञान के लिए चुनौति है । तन्त्र–मन्त्र का प्रत्यक्षीकरण तो प्रसिद्ध ही है । मन्त्रों से सांप बिच्छु के विष को शांत करना तो साधारण बात है ।

इसके अतिरिक्त अन्य चिकित्सा–पद्धतियों की तुलना में आयुर्वेद चिकित्सा–शास्त्र की विशेषता यह भी है कि **'मितं च सारं च वचो हि वग्मिता'** के सिद्धान्तानुसार बड़ी बात को संक्षिप्त सूत्र–रूप में ही कह देने की उसकी अपनी विशेषता है । न कि पाश्चात्य–ग्रन्थों की तरह **'खोदा पहाड़ निकली चुहिया'**। जैसा कि देखे कफ, वात–पित्त आदि की चिकित्सा के बारे में संक्षेप में ही कितनी सुन्दर बात कह दी गई है –

"वमनं कफ – नाशाय वातनाशाय मर्दनम् ।
शयनं पित्तनाशाय, ज्वरनाशाय लंघनम् ।। "

अर्थात् कफनाश करने के लिये वमन (उल्टी), वातरोग में मर्दन (मालिश), पित्तरोग में शयन व ज्वर में लंघन (उपवास) करना चाहिये। आयुर्वेद–शास्त्र केवल रोगी की चिकित्सा करने में ही विश्वास नही करता, अपितु उसका तो सिद्धान्त हैं– 'Prevention is better then cure' अर्थात् रोगी होकर चिकित्सा करने से अच्छा हैं कि बीमार ही न पड़े । इसके लिये आयुर्वेद–शास्त्रों में

स्थान–स्थान पर ऐसी बातें भरी पड़ी हैं जिसके पालन से वैद्य की आवश्यकता ही न पड़े । जैसे –

"दिनान्ते च पिबेद् दुग्धं निशान्ते च जलं पिबेत् ।
भोजनान्ते पिबेत् तक्रं, वैद्यस्य किं प्रयोजनम् ।।"

यदि रात्रि को शयन से पूर्व दुग्ध, प्रातःकाल उठकर जल और भोजन के बाद तक्र (मठ्ठा) पिये तो जीवन में वैद्य की आवश्यकता ही क्यों पड़े। इस प्रकार के सूत्रों के आधार पर ग्राम्य–जीवन में बारहों मास के उपयोगी खाद्यों का सुन्दर – संकेत इस प्रकार कर दिया गया हैं जिनका सेवन अवश्य करणीय हैं –

"सावन हर्रे भादौ चीत, क्वार – मास गुड़ खाये मीत ।
कार्तिक मूली अगहन तैल, पूषे करै दूध से मेल ।।
माघे घी व खीचड़ी खाये, फागुन उठि कै प्रातः नहाये ।
चैत मास में नीम व्यसवनि, भरी वैसाख खाय अगहनि ।।
जेठ मास दुपहरिया सोवे, ताकर दुःख आषाढ़ में रोवे ।।"

बारहों मास के इन विधि – खाद्यों के अतिरिक्त निषेध खाद्य भी हैं जिन्हे भूल कर भी न खाये । जैसे –

"चैत्रे गुड़ वैसाखे तैल, जेठे पंथ आषाढ़े बेल ।
सावन साग न भादों दही, क्वार करैला कार्तिक मही ।।
अगहन जीरा न पूषे धना, माघे मिश्री फाल्गुन चना ।
इन बारहों से बचे जो भाई, ता घर वैद कदू नही जाई ।।"

इधर ग्रामीण–जीवन में एक प्रचलन अवश्य कुछ गलत पड़ गया हैं कि – "खाय के परि जाई, मारकै टरि जाई" । जबकि आयुर्वेद का तो सिद्धान्त है कि– 'भुक्त्वा शत–पदं गच्छेत् छायायां हि शनैः शनैः' भोजन शयन से कमसे कम 2–3 घंटे पहले ही कर लिया जावे । अन्यथा कब्ज रहेगी । इसके अतिरिक्त दीर्घायु के लिए भी एक जगह बडा सुन्दर संकेत कर दिया गया है कि –

"वामशायी द्विभुञ्जानो, षण्मूत्री द्विपुरीशकः ।

स्वल्प–मैथुनकारी च शतं वर्षाणि जीवति ।।"

अर्थात् बायी करवट सोने वाला, दिन में अधिकतम दो बार भोजन करने वाला, कम से कम छः बार लघुशंका, 2 बार शौच जाने वाला व गृहस्थ में आवश्यक होने पर स्वल्प मैथुनकारी व्यक्ति सौ वर्ष तक जीता है ।

आयुर्वेद शास्त्र ही नहीं अपितु अथर्ववेदीय श्रुति–भगवती भी ऐसी ही कामना करती है कि –

"कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम्" (अ.2/13/4) लेकिन आगे ही एक बात अवश्य कह दी है कि –

"प्रत्यक् सेवस्व भेषजं जरदष्टि कृणोमि त्वा"

अर्थात् संयोग से यदि बिमार पड़ जाओ तो औषधी अवश्य ले लेना चाहिये। इसमें प्रमाद करने की कत्तई आवश्यकता नहीं। क्योंकि– ***"शरीर–माध्यमं खलु धर्म–साधनम्"*** स्वस्थ शरीर ही तो धर्म–साधन का माध्यम है । सन्त कहते है–

पहला सुख निरोगी काया। दूजा सुख घर में हो माया।।
तीजा सुख सुत दारा वश में। चौथा सुख जस खूब कमाया।।

अन्य चिकित्सा–पद्धतियों से भिन्न आयुर्वेदशास्त्र स्वास्थ्य का उपयोग धर्म–साधन ही स्वीकार करता है ।

इस बात का वह स्थान–स्थान पर प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष रूप से संकेत करता रहता है। इसी के अनुसार नारायण–तैल के उपयोग को बताते समय श्लेष में यह भी संकेत कर देते है कि वास्तव में तो इन रोगों का उपशमन नारायण (भगवान्)के हाथ में ही है–

'नारायणं भजत रे जठरेण युक्ताः, नारायणं भजत रे पवनेन युक्ताः।
नारायणं भजत रे भवभीति–युक्ताः, नारायणात् परतरं नहि किञ्चिदस्ति।।'

यह भारतीयों के लिए एक गौरव का विषय है कि पारे से स्वर्ण बना देने वाले रसायनाचार्य यहाँ तक डिण्डिम–घोष कर देते हैं कि यह रस सिद्ध कर देने पर

दैहिक–रोग की तो बात ही क्या दुनिया भर के दारिद्र्य–रोग को मिटाया जा सकता है–

' सिद्धे रसे करिष्यामि निर्दारिद्र्यमयं जगत् ।।'

इस प्रकार के असंख्यों संकेत–सूत्र हमारे शास्त्रों में भरे पड़े है जिन पर व्यवस्थित रूप से यदि सम्यग् अनुसन्धान किया जाये तो भारत–वर्ष न केवल अपने प्राचीन गुरुत्व की प्रतिष्ठा को पा जायेगा, अपितु शीघ्र ही आज का दरिद्र–भारत प्राचीन स्वर्ण –भारत में भी बदल सकता है।

एक बार श्रीमद् भागवत पढ़ते समय मेरा ध्यान अचानक इस श्लोक पर अटक गया कि–

'प्रजापतिर्नाम तयोरकार्षीद्, यः प्राक्स्वदेहाद्यमयोरजायत।
तं वै हिरण्यकषिपुं विदुःप्रजाः, यं तं हिरण्याक्षमसूत साग्रतः।।'

(भा.3/17/18)

अर्थात् "प्रजापति कश्यप अपने यमज जुड़वा – पुत्रों का नामकरण करते हुए कहते हैं कि दोनों में से मेरे शरीर से पहला वीर्य जिसके लिए निकला वह **'हिरण्यकषिपु'** कहलायेगा। किन्तु मां के गर्भ से जो पहले निकला वह **'हिरण्याक्ष'** कहलायेगा।" मेरी शंका थी कि पहले वीर्य–वाला बाद में कैसे पैदा हो सकता हैं ? इस पर अनुसन्धान शुरू किया तो पता चला कि यमजोत्पत्ति में ऐसा ही होता हैं।

अभी सुप्रीमकोर्ट में दो यमज–राजकुमारों के उत्तराधिकार के प्रश्न पर वकील ने जज के सामने एक संकरे मुंह की शीशी में से दो छोटी–बड़ी गोलियों को बाहर निकालने के प्रयोग का प्रदर्शन किया तो हर बार छोटी गोली ही पहले निकली । इस प्रकार बाद में उत्पन्न राजकुमार को ज्येष्ठ सिद्ध करा दिया । मैने 8–10 यमज–युग्मों पर अनुसन्धान किया । सभी में बाद में उत्पन्न पुत्र डील–डौल, भार, कद सभी में पहले उत्पन्न से कुछ बड़ा ही निकला ।

इसी प्रकार विभिन्न व्याधियों में तारतम्य बिठाने को कई लोगों पर अनुसन्धान करने पर एक बात सामने आई कि जिन लोगों का जन्म शीतकाल में

होता हैं, उनकी शीत की बिमारिया ही अधिक होती हैं। जिनका जन्म ग्रीष्म– ऋतु में होता हैं, उनको गर्मी की ही बिमारियां अधिक होगी व गर्मी भी असह्य होगी । इस प्रकार के अनुसन्धानों में जहां मानव–जाति का बहुत बड़ा कल्याण होगा। वहीं शास्त्रों की आधुनिक युग में भी प्रामाणिकता से रुची बढेगी। ऐसी ही एक अनुसन्धान –योजना शीघ्र बनायी जा रही हैं ।

चिकित्सा के विषय में वर्तमान स्थिति में यह अवश्य एक चिन्तनीय बात हैं कि आज का चिकित्सक अनुसंधान, स्वाध्याय – अनुगम के अभाव में रोगीपर खिलौने की तरह चिकित्सा की आड़ में मात्र प्रयोग करता जाता है कि –

'यस्य कस्य तरोर्मूल, येन केनापि पेष्टितम् ।
यस्मै कस्मै प्रदातव्यं, यद्वा तद्वा भविष्यति ।।"

– जिस किसी जड़ी को किसी भी प्रकार पीसकर किसी भी तरह किसी भी रोगी को दे दो। कुछ न कुछ तो प्रतिक्रिया होगी ही ।और होता वही है कि अन्त में प्रयोग करते–करते रोगी स्वर्ग ही सिधार जाता हैं । उन चिकित्सकों के बारे में ठीक ही कहा गया हैं कि –

"वैद्यनाथ ! नमस्तुभ्यं क्षपिताशेष – मानव ।
त्वयि संन्यस्त – भारोऽयं कृतान्तः सुखमेधते ।।"

(सुभाषितावली – 2319)

इस प्रमाद में आजकल के कुछ चिकित्सकों की अर्थबुद्धि भी कम कारण नही है । क्योंकि "अर्थ – बुद्धिर्न धर्मवित्" जो लोग मरणासन्न व्यक्ति से भी कुछ न कुछ झिटक लेने की भावना रखते हैं, वे धर्मवित् होकर चिकित्सा – सेवा तो कर ही कैसे पायेगें ! इस सामाजिक – व्यवस्था पर किसी ने विनोद में बड़ी सुन्दर बात कही हैं कि –

"नटोऽपि दद्याद् गणकोऽपि दद्यात्, सम्प्रार्थितः पाशुपतोऽपि दद्यात् ।
वैद्यः कथं दास्यति याचमानो, यो मर्तुकामादपि हर्तुकामः ।।"

(सुभाषित रत्न भाण्डागारम्)

इसी प्रकार एक गांव में जलती हुई चिता को देखकर चिकित्सक – महोदय को आश्चर्य हुआ कि हमारे गये बिना ही इसकी टिकट कैसे कट गई –

" चितां प्रज्ज्वलितां दृष्ट्वा वैद्यो विस्मयमागतः ।
नाहं गतो न मे भ्राता कस्येदं हस्त – लाघवम् ।।"

(प्रबन्ध पञ्चशती 1.74.2)

इसमें कोई संदेह नही कि आयुर्वेद–शास्त्र औषधी से भी अधिक महत्त्व पथ्य को देता है । क्योंकि –

"विनापि भेषजं व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते ।
न तु पथ्य – विहीनोऽयं भेषजानां शतैरपि ।"

लेकिन कभी–कभी यह पथ्य भी अर्ध–पण्डित–वैद्यों के लिए अपनी असफलता छिपाकर रोगी पर दोष मढने का अमोघ – अस्त्र बन जाता है । क्योंकि उनका तो सिद्धान्त–वाक्य ही हैं –

"भैषज्यं तु यथाकामं पथ्यं तु कठिनं वदेत् ।
आरोग्यं वैद्य–माहात्म्यात् अन्यथा त्वमपथ्यतः ।।"

आयुर्वेद चिकित्सा – पद्धति के हितैषी गुणग्राही वैद्यगण इन बातों को मात्र विनोद में ही न लेकर यदि कुछ गम्भीरता से लें तो शक नही कि आज लोगों पर जो एलोपैथी का भूत चढ़ गया हैं, उसका तुरन्त भ्रम न टूटे ! इति शम् ।



काशीपीठाधीश्वर श्री रामशरणाचार्य जी म. : एक परिचय

पश्चिमी राजस्थान के बालोतरा–मारवाड़ नगर में फाल्गुन कृष्णा नवमी विक्रम संवत् 2012 (6.3.1956 ई.) के दिन माता श्रीमती सीतादेवी एवं पिता श्री रामस्वरूपजी सिंहल के एक उच्च परिवार में आपका जन्म हुआ। जहाँ अत्युच्च मूल नक्षत्र के कारण सभी ने नक्षत्र पर ही नामकरण कर दिया, वहीं ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की कि देश– विदेश में सर्वत्र निर्बाध–गति वाला यह जातक या तो कोई दिव्य–योगी होगा या बड़ा सम्राट्।

परिवार के सात्त्विक, धार्मिक वातावरण ने वहीं प्रारम्भिक शिक्षा के साथ ही बाल्यावस्था से ही आध्यात्मिकता और समाज–सेवा की ओर प्रेरित किया। यद्यपि बचपन से ही हिमालय की कन्दराओं में तप करने की ललक उठती रहती थी, किन्तु बुद्धि के परिपक्व हुए बिना ऐसी घोषणा कर कहीं उपहास का पात्र न बन जाऊँ, अतः बालक–मन उपयुक्त समय की प्रतीक्षा करता रहा। साथ ही 'वेद और विज्ञान' के समन्वय के प्रयास ने विज्ञान का अध्ययन कराते हुए जोधपुर–विश्वविद्यालय तक पहुँचा दिया।

सर्व–विद्या की राजधानी काशी में

19 वर्ष की अल्पायु में ही वैराग्य के झंझावातों में हिलोरे लेते एक दिन यह किशोर घर से ही निकल पड़ा और वहीं 'शिवा के रामदास' की तरह श्री वैष्णव–रामानन्द–सम्प्रदाय के सिद्ध–सन्त श्री हरिदास जी म. के चरणों में विरक्त–दीक्षा–ग्रहण की। राम की शरण आते ही वह मूल अब "रामशरण" हो गया। किन्तु आश्रम की समृद्धि और जन्म–भूमि का व्यामोह भी "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्– (सम्पूर्ण विश्व को हिन्दू बना डालो)" के उद्देश्य से उस युवा–संत को डिगा न पाया। अन्ततः वह फक्कड़–साधुओं की तरह फाका– मस्ति करते, विचरते, शीतल, उत्तर–वाहिनी–गंगा के पावन तट पर बसी 'ज्ञान–खानि' व 'प्राच्य–सर्व–विद्या की राजधानी' काशी पहुँच गया।

वाराणसी में ऋषि–मुनियों की श्रृंखला की अन्तिम–कड़ी, काशी पंडित सभा के अध्यक्ष, सबसे वयोवृद्ध–ज्ञानवृद्ध, शतवर्षीय विद्वान् पंडितराज श्री गोपाल–शास्त्री जी अपने ज्ञान–भास्कर की अस्ताचलावस्था में **"को वेदानुद्धरिष्यति–** (वेदों की रक्षा अब कौन करेगा)!" की चिन्ता में मग्न किसी **'कुमारिल भट्ट'** की प्रतीक्षा में ही बैठे थे कि एक दिन उस युवा–संत ने आकर प्रणिपात किया– **"अभिवादये! रामशरणदासोऽहम्।"** गुरुजी ने आशीर्वाद दिया, **"आयुष्मान् एधि..."**, " आप आ गए, बहुत दिनों से आए, बड़ी देर कर दी।" संत ने आश्चर्यचकित होकर कहा– "गुरो! मैं तो आपके चरणों के दर्शन पहली बार कर रहा हूँ।" गुरुजी ने कहा– **"तान्यहं वेद सर्वाणि, न त्वं वेत्थ परं तप–गी."** "ये सब रहस्य अभी आप नहीं जानेंगे, मैं जानता हूँ।"

अभिनव पाणिनिका प्रश्रय

फिर तो पग–पग पर अनेक चमत्कार हर पल स्वतः दिखने लगे। वर्षों तक जोशीमठ की हिमालय की कन्दराओं में ज्ञान–साधना करने वाले **"अभिनव–पाणिनि"**– कल्प उन शास्त्रीजी के अन्तेवासित्व में **"अल्पकाल विद्या सब आई।"** शीघ्र ही, व्याकरण में पंतजलि के महा–भाष्य पर शोध के बाद साहित्य, योग, वेदान्तादि –दर्शन, ज्योतिष, भागवत, उपनिषद,वेदादि शास्त्रों का अध्ययन किया। साथ ही श्रीमद् भागवत, रामायणादि की सभी प्रचलित– प्रवचन शैलियों का सांगोपांग अध्ययन करने के लिए स्वयं ब्रह्मलीन श्री करपात्री जी म. व अयोध्या के पंडित श्री रामकुमार दासजी से लेकर श्री विजयानन्द जी आदि की परम्परा का भी सान्निध्य पाया। देश के अन्य भी गणमान्य सन्त–महात्माओं, धर्माचार्यों, उपदेशकों, वक्ताओं, विद्वानों से विचार–विनिमय करते, उनसे शास्त्रों में निहित गूढ़ रहस्यों को समझते हुए अपनी ज्ञान की दीपशिखा को और अधिक प्रोज्ज्वल बनाये रखने हेतु उनके द्वारा अनुभूत ज्ञान–नवनीत का संग्रह, अभ्यास, चिन्तन मनन करते रहे।

अनुष्ठानात्मक श्रीमद्भागवत सप्ताह

उसी के फल–स्वरूप आपकी अपनी अनूठी, मन्त्र–मुग्ध, जीवन–परिवर्तक, क्रांतिकारी–रोचक शैली में श्रीमद् भागवत, रामायण, वेदान्त, हिन्दुत्व आदि विषयों पर आपका प्रवचन अनायास ही श्रोताओं के मन को मुग्ध कर देता है। सामान्य प्रवचनों के अलावा आपके विशेष अनुष्ठानात्मक "श्रीमद् भागवत सप्ताह" एवं नव दिवसीय "श्री राम–कथा–पारायण ज्ञान–यज्ञों" के आयोजन व श्रवण–मात्र से हजारों श्रोताओं को नाना–प्रकार की दृश्य–अदृश्य बाधाओं, लाइलाज–व्याधि, पारिवारिक कलह, व्यापार, नौकरी, कृषि आदि में उतार–चढ़ाव से तनाव आदि से राहत मिलने के भी सन्देश मिलते हैं। कथाओं के प्रसंगों को रूपायित करने की अद्भुत क्षमता, चित्रात्मकता एवं जीवन्त–दृश्य–सर्जन करने की विशिष्ट–सिद्धि, शब्द के माध्यम से शब्दातीत प्रभु की ओर अभिमुख कराने वाली रुचिकर एवं प्रांज्जल–शैली से हृदय में तरंगायित भक्ति–रस–सागर की लोल लहरियां,पुष्प–गुच्छों की तरह हवा में जब आप श्री के मुखारविन्द द्वारा बिखरती है तो कथा–स्थल सहज ही महक उठता है।

विश्व भ्रमण

गत कुछ वर्षों में महाराज श्री की अनुपम कथा–शैली की सुवास देश–विदेश में बड़ी तेजी से व्याप्त हुई है। भारत में तो सर्वत्र उनके कथा–प्रवचन लोकप्रिय हुए ही हैं; ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, हौलेण्ड, बेल्जियम, लक्जेम बर्ग, नीदरलैण्ड, इटली, स्विट्जरलैण्ड, नेपाल आदि देशों में भी उनके प्रवचन–आयोजन होते रहते हैं। देश–विदेश में आपकी कथाओं की भेंट में आई राशि से आपके संरक्षण में पीड़ित मानवता की सेवा हेतु कई सेवा–प्रकल्प चल रहे हैं। 'रामशरण मिशन' व 'हिन्दू रक्षा समिति' के संस्थापक– अध्यक्ष के रूप में लगभग आधे विश्व का प्रवास कर कई देशों में आप श्री द्वारा हिन्दू–संस्कार केन्द्र खोले जा रहे हैं।

सत्संग से व्यवहार निपुण–कला

तब क्या आप भी सत्संग से अपने जीवन को अधिक सुखमय बनाना चाहते हैं? या आप वाक्पटुता द्वारा अपनी मित्र– मण्डली आदि में शीघ्र मेल–मिलाप से उन्हे प्रभावित कर अधिक सफल जीवन जीना चाहते हैं? या आप एक अधिक सफल व्यापारी , अधिकारी, क्लर्क, डाक्टर, इन्जीनियर, अध्यापक, छात्र, ग्रहिणी, नेता, वक्ता या किसी भी क्षेत्र में शीघ्र उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त करने की व्यवहार–निपुण–कला जानना चाहते हैं? तो देश–विदेश के लाखों भक्तों की तरह हो सकता है, महाराज श्री के सत्संग के कुछ घण्टे आपका भी चमत्कार–पूर्ण, जीवन –परिवर्तन कर दें। अतः ऐसे किसी अवसर को हाथ से न चूकने दें।

ब्रिटेन के विश्व हिन्दू सम्मेलन में

इन कथा–प्रवचनों के अलावा भी महाराजश्री के जीवन के कई पहलू हैं। वस्तुतः आपका एक बहु–आयामी व्यक्तित्व है। आपने सन् 1989 में मिल्टन कीन्स–ब्रिटेन में हुए अब तक के सबसे बड़े **"विराट् हिन्दू सम्मेलन"** जिसमें विश्वभर के 400 प्रमुख धर्माचार्य व लगभग डेढ लाख प्रतिनिधियों ने भाग लिया था, में व 1986 में काठमाण्डू– नेपाल में हुए **"विश्व हिन्दू सम्मेलन"** में भी भारत का प्रतिनिधित्व किया था। इस वर्ष स्वामी विवेकानन्दजी के शिकागो प्रवचन की शताब्दी पर **"विश्व दृष्टि–2000 सम्मेलन"** के अवसर पर भी अमेरिका–कनाड़ा आदि देशों के कार्यक्रम का महाराज श्री को निमन्त्रण मिला है।

विश्व धर्मशान्ति सम्मेलन के प्रतिनिधि

सौ वर्ष पहले स्वामी श्री विवेकानन्द जी को अमेरिका के सर्वधर्म सम्मेलन में जिस संस्था ने उन्हे निमन्त्रित किया था, उस **'विश्व धर्म शान्ति सम्मेलन'** (W.C.R.P. - World Conference of Religion for Peace) न्यूयॉर्क–अमेरिका जिसको संयुक्त राष्ट्र संघ की परामर्श कारिणी सभा का दर्जा मिला हुआ है, का भारत के हिन्दु–धर्माचार्य का प्रतिनिधित्व वर्तमान में काशीपीठाधीश्वर श्री रामशरणाचार्य जी म. ही कर रहे है। उसके सर्वधर्म सम्मेलन बराबर विश्व के विभिन्न

देशों में होते रहते है।

उसके सम्मेलनों में म. श्री का यही संदेश रहता है कि आज विश्वभर में बढ रही अशान्ति का सम्बन्ध अवश्य ही किसी न किसी रूप में विभिन्न धर्मों से ही है। फलतः विश्व शान्ति भी हम सभी धर्मानुयायियों के ही हाथ में है।

सर्व धर्ममत एक साथ पल्लवित हों

अतः हम सभी धर्माचार्य मिलकर एक ऐसा संगठन खड़ा करें जहाँ हिन्दू-धर्म की उदारता, बौद्ध धर्म की करूणा, जैन धर्म की अहिंसा, पारसी धर्म की सत्य-प्रियता,यहूदी -धर्म के यम-नियम, ईसाई धर्म का प्रेम, इस्लाम का भ्रातृत्व, सिखों का शौर्य, कन्फ्यूश धर्म का सदाचार, ताओं धर्म का प्रकृति प्रेम, शिन्तों-धर्म का गुरुजन-समादर एक साथ पुष्पित-पल्लवित होकर विश्व में सत्य, प्रेम, करूणा का विकास व स्थायी-शान्ति की स्थापना करें। लेकिन इसके लिए कई बार लोग विश्व के सबसे प्राचीन हिन्दू-धर्म को ही अन्य धर्मों में विलित करने का षड्यन्त्र करते रहते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए। यह कार्य किसी के अस्तित्व को समाप्त करके नहीं, वरन सहस्त्र-दल कमल की पंखुड़ियों की तरह बिना किसी को दबाये, सबको पल्लवित होने का अवसर देकर करें।

हिन्दू जागरण बाधक नहीं साधक

सर्वधर्ममत-समन्वय में हिन्दू-जागरण को महाराज श्री किसी भी प्रकार से बाधक नहीं बल्कि साधक ही समझते हैं। कोई हठाग्रही वृथा ही इससे भयग्रस्त हो तो हम क्या करें? उनके डर से हम अपनी यात्रा तो अवरुद्ध नहीं कर सकते! यही दृष्टिकोण म. श्री का **'रामजन्म भूमि मुक्ति आन्दोलन'** के विषय में रहा है। (इस विषय पर आपने तटस्थ रूप से एक पुस्तक **''राम-जन्म-भूमि विवादः तथ्य और सत्य''** भी लिखा है जिसे पुस्तक-महल (रेपिडेक्स) दिल्ली-6 ने प्रकाशित किया है। इसके अतिरिक्त भी आपकी कई स्वतंत्र पुस्तकें व विविध विषयों पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में सैकड़ों लेख प्रकाशित होते रहते हैं।)

सरदार जी के छद्म–वेश में राम कार सेवा

महाराज जी श्रीराम–जन्म–भूमि मुक्ति संघर्ष व विहिप के केन्द्रिय धर्माचार्य रहे हैं। रामकार सेवा में रासुका के वारण्ट के बावजूद सरदार जी के छद्म–वेश में पैदल अयोध्या पहूँच कर 2 नवम्बर 1990 की कार सेवा में धर्माचार्यों की ओर से एक जत्थे का सफल नेतृत्त्व आपने ही किया था। चारों तरफ गोलियों से घिरने के बावजूद घायलावस्था में भी उस दिन कनक भवन तक जत्थे को पहुँचाया।

महाराजश्री विश्व हिन्दू महासंघ, काठमाण्डू (नेपाल), अखिल भारतीय गौ–रक्षा समिति, दिल्ली, अखिल भारतीय संस्कृत सम्मेलन, लखनऊ, सार्वभौम संस्कृत प्रतिष्ठानम्, अन्तर्राष्ट्रीय योग–तन्त्र–ज्योतिष–शोध–संस्थान आदि दर्जनों केन्द्रीय संस्थाओं के मानद सभासद भी हैं।

सादा जीवन–उच्च विचार

कार्य–क्षेत्र में आपकी गंभीरता इतनी कि किसी बड़े विद्वान को भी बात करने में संकोच हो। और सामान्य–जीवन में इतनी सादगी कि एक छोटा–सा बच्चा भी कुछ क्षणों में आपसे घुलमिल जाये। अपने दैनिक जीवन में विनम्र, बिना किसी अहम्मन्यता व बालसुलभ विनोदी स्वभाव के कारण आपके कार्य क्षेत्र में गये बिना आपको नहीं पहचाना जा सकता।

आजकल आप श्री भारत की प्राचीनतम विद्याओं–योग–तन्त्र, ज्योतिष के किए जा रहे दुरुपयोग से भी चिन्तित हैं। इनके सत्क्रियान्वयन के भी प्रयास चल रहे हैं। दर्शन–शास्त्र के कई ग्रन्थों पर आपकी भिन्न–व्याख्याओं के कारण कई विद्वान् आपको एक विशिष्ट–दार्शनिक स्वीकार करते हैं। यों आप संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, जर्मन, राजस्थानी, गुजराती, तेलुगु आदि कई भाषाओं पर अधिकार रखते हुये भी अपने आश्रम या संस्कृतज्ञों के बीच संस्कृत– भाषा में ही बात करना अधिक पसन्द करते हैं। एक मास में ही सरलता से संस्कृत–सिखाने की पद्धति का भी आपने परिष्कार किया है।

उज्जैन कुम्भ में ''काशीपीठाधीश खालसा''

आपकी विविध धार्मिक–सेवाओं से प्रेरित होकर शतवर्षीय 'काशी पण्डित सभा' ने आपको 'काशीपीठाधीश–सार्वभौम भागवत रत्न' आदि उपाधियों से विभूषित किया। तो सन् 1992 के उज्जैन–कुम्भ में 'अ.भा. खालसा परिषद' के तत्त्वावधान में भारत–भर के सभी श्री महन्तों द्वारा प. पू. श्री नृत्य–गोपालदास जी महाराज के सान्निध्य में आपके ''काशीपीठाधीश खालसा'' को मान्यता देकर आपको उसका खालसाधीश बनाया गया। उज्जैन–प्रयाग–हरिद्वार–कुम्भों में आपके विशाल 'सन्त–सेवा शिविर' में जहाँ हजारों सन्तों की सेवा, अन्न–क्षेत्र, सत्संग, रामशरण मिशन चिकित्सालय, भूले–भटकों का राहत शिविर, धार्मिक–प्रदर्शनी का आयोजन हुआ, वहीं सम्पूर्ण–मेले में सर्वाधिक दर्शकों को आकर्षित करने वाली रामलीला का आयोजन भी आपके शिविर में हुआ।

बालोतरा–मारवाड़ में आपके गुरुदेव संत श्री हरिदासजी महाराज ने चार–पांच साल पूर्व ही अपने शिष्य एवं विख्यात धर्माचार्य काशीपीठाधीश्वर श्री रामशरणाचार्यजी महाराज को अपना उत्तराधिकारी –गादीपति घोषित कर बंद लिफाफे भक्तों को थमा दिये थे। उनकी सत्रहवीं दिनांक 9.11.1995 को साकेत–महोत्सव पर श्री रामशरणाचार्यजी महाराज को सभी सन्तों द्वारा चादर ओढा कर श्री रामानन्दीय वैष्णव बिन्दुगादी, चोंच, बालोतरा–मारवाड़ के गादीपति–अभिषेक का विधि–विधान संपन्न कराया गया।

श्री हरिदासजी महाराज ने पुराने चोंच मन्दिर के बहुमुखी विकास की कड़ी में एक विशाल सत्संग भवन, भव्य मंदिर, सीता रसोई, संत निवास, धर्मशाला व विशाल सिंहद्वार का निर्माण तथा हनुमानजी के मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया था। ईस्वी सन् 1979 की भीषण बाढ के बाद भक्त जनों के अथाह आग्रह पर आप पुराने चोंच मन्दिर पर प्रतिष्ठित श्रीराम–दरबार की पावन प्रतिमाओं को वृंदावन बगिची के सामने लाकर अति भव्य आकर्षक व कलात्मक कांच मन्दिर का निर्माण करवा कर दिनांक 18–05–1981 ई. को पुनः प्रतिष्ठित किया । मन्दिर–निर्माण की ऐसी

वास्तु–कला गुजरात के विश्व–विख्यात स्वामी–नारायण–मन्दिरों को छोड़कर दूर–दूर तक नहीं मिलती ।

श्री हरिदासजी महाराज द्वारा बालोतरा शहर के मध्य में बाहर से आने वाले यात्रियों के लिये 40 कमरों तथा तीन होल वाले विशाल हनुमंत भवन धर्मशाला का निर्माण कराया गया । इस भवन के निर्माण से आगंतुको को पूर्ण सुविधा उपलब्ध होने के साथ ही शादी–विवाह के मौकों पर बारात आदि ठहराने की एक बड़ी समस्या का समाधान हो गया । पुज्य गुरू महाराज द्वारा बालोतरा के औद्योगिक क्षेत्र की मुख्य सड़क खेड रोड़ पर एक भव्य व पश्चिमी राजस्थान में प्रसिद्ध **"संत श्री हरिदास चिकित्सालय व शोध केन्द्र"** का निर्माण भी कराया गया जिसमें विशेष कर आंखों के पूर्ण इलाज की सुविधा के साथ ही फिजीसियन, सर्जन, स्त्री–रोग विशेषज्ञ तथा रेडियोलोजिस्ट व 24 बेड कॉटेज वार्ड, जनरल वार्ड, नर्सिंग सुविधा युक्त आवास कोम्पलेक्स की भी व्यवस्था की गयी है। इस अस्पताल के सफल संचालन में आंखों के ऑपरेशन के कई केम्प लग चुके है तथा आज तक हजारों नैत्र ऑपरेशन किये जा चुके हैं । अन्य विभागों मे ऐअर कंडीशन–ऑपरेशन थियेटर, सोनोग्राफी, एक्सरे, ई.सी.जी., ब्लड ओटो–एनलाईजर, पेथोलोजिकल लेबोरेट्री, कम्युटराईज्ड कार्डीयोमोनीटर एवं आयातीत यन्त्रों आदि द्वारा प्रति दिन 4–5 सौ रोगी लाभान्वित होते हैं । इन दोनो संस्थानों के संचालक ट्रस्ट **'संत श्री वीरमराम चेरीटैबल ट्रस्ट"** के वर्तमान अध्यक्ष भी इस समय श्री रामशरणाचार्य जी महाराज ही है।



पुण्य प्रेम परोपकारार्थ

श्री सीताराम मन्दिर ट्रस्ट, काशीपीठ (रजि.) द्वारा संचालित

अन्तर्राष्ट्रीय रामशरण मिशन

अन्तर्राष्ट्रीय रामशरण मिशन के सदस्य बनकर सहयोग करें–

मिशन के सम्पूर्ण विश्व में "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्–(सारे विश्व को हिन्दू बना डालो)" के सन्देशो को गाँव–गाँव तक पहुँचाने के लिए, सभी देशों में केन्द्र–स्थापित करने हेतु,देश–विदेश में धर्म–प्रचारकों की एक बड़ी टीम तैयार करने के लिए, मिशन के आश्रमों द्वारा धर्म, संस्कृति व संस्कृत के संरक्षणार्थ विविध गतिविधियों के संचालन के लिए, वेद–पुराण, व्याकरण, साहित्य, वेदान्त, योगादि–दर्शन, ज्योतिष–शास्त्रादि प्राच्य–विद्याओं के संरक्षणार्थ–गुरुकुलों में छात्रों को निःशुल्क शिक्षा, आवास, भोजनादि सुविधा प्रदानार्थ, धर्म–प्रचारक साहित्य–पत्रिकादि प्रकाशनार्थ, गौ–सेवा, सन्त–सेवा, यज्ञ–हवन, मन्दिर–निर्माण, कुम्भ मेलों में सेवा–शिविर संचालन, सत्संग व संत–सम्मेलन के आयोजन जैसे धार्मिक, सामाजिक, परोपकार के कार्यों में सहभागी बने। कैसे?

※ आजीवन–सदस्यता (LIFE MEMBERSHIP)

एक – मुश्त 4444/– या वार्षिक 444/– (विदेशों में एक मुश्त 500 पाउण्ड और वार्षिक 50 पाउण्ड)।

※ इससे आपको क्या मिलेगा?

1. उपरोक्त परमार्थ से अनमोल पुण्य प्राप्ति। 2. मिशन से सम्बन्धित देश–विदेश के सैकड़ों आश्रमों में तीर्थ–यात्रा, पर्यटन के समय निःशुल्क अधिकाधिक मार्ग–दर्शन, आवास, सत्संग, भोजनादि की यथाशक्य सुविधाएं। 3. मिशन द्वारा समय–समय पर प्रकाशित धर्म–प्रचारक–सत्संग–साहित्य व मासिक आध्यात्मिक

–पत्रिका **''सद्धर्म–वाणी''** आदि घर बैठै निःशुल्क। 4. आपके निकट क्षेत्र में महाराज श्री के कार्यक्रम पर बराबर आपको पूर्व–सूचना व अधिकाधिक आशीर्वाद।

⁂ निम्न आय वाले सज्जन भी मिशन से 100 रु. वार्षिक–

शुल्क से **''विशिष्ट–सभ्य''** व 10 रू. वार्षिक शुल्क से **''सामान्य–सभ्य''** बनकर जुड़ सकते हैं। किन्तु इन्हें अपने क्षेत्र के परिचितों में से 25–50 अन्य भी **''सभ्य''** बनाना चाहिए। इन 'सभ्य सहभागियों को भी मिशन की उपरोक्त में से यथाशक्ति सुविधाएं प्रदान करने का प्रयास किया जायेगा।

अपने क्षेत्र के ये सभी "सभ्य" मिलकर **''रामशरण मिशन''** की केन्द्रीय स्वीकृति लेकर एक क्षेत्रिय शाखा खोल सकते हैं। अपने पास के किसी धार्मिक–स्थल पर सामुहिक रूप से दैनिक **"हनुमान चालीसा", "रामायण का पाठ"**, कथा या साप्ताहिक **"सुन्दर काण्ड–पाठ"** आदि का आयोजन करें। केन्द्र से भी पूरा मार्ग–दर्शन, साहित्य, प्रवचन के लिए वक्ता आदि भेजने की व्यवस्था की जायेगी।



स्थायी कोष योजना

धन की शुद्धि

हमारे पास तन, मन और धन तीन चीजें हैं। उनमेंसे तन का शुद्धि स्नान करने से व मन की शुद्धि ध्यान से होती है। किन्तु धन की शुद्धि मात्र दान से ही होती है। बिना शुद्ध किया हुआ धन तो तन और मन को भी कष्टदायक, दूषित करके दवा, दारु आदि में नाश होगा ही। अतः व्यापार, नौकरी आदि से अर्जित धन में से एक आना यानि 5–6 प्रतिशत राशि धर्मादा में देने की परम्परा रही है। आज के महंगाई के जमाने में अत्यल्प आय वालों को भी स्वयं प्रेरित व नियम से, कम से कम एक प्रतिशत राशि तो अवश्य ही दान करनी चाहिए। याद रखें, आस–पास गाँव–समाज में लगाया गया धन, दान नहीं, मात्र यश कमाने का साधन है। दान तो दूर–तीर्थ पर "भेजने वाले सीतारामजी व पाने वाले सीतारामजी" विधि से गुप्त रूप से करना ही है।

चिड़ी चोंच भर ले गई, नदी न घटयो नीर।
दान दिये धन ना घटे, कह गये दास कबीर।।

कुएं में से पानी उलीचने से ही ताजा–नया पानी आता है। नहीं निकालने पर वह तो अन्ततः सूख ही जाता है। समाज–सेवा, सन्त–सेवा, गौ–सेवा आदि फुरसत या बेगार का काम नहीं हैं। इन कार्यों में लगी हुई संस्थाएं यदि धन के अभाव में कार्य न कर सकें तो यह धनिकों व धार्मिकों के लिए शोभनीय नहीं है।

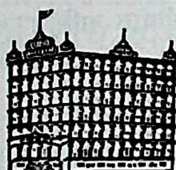
कल का कोई भरोसा नहीं

सर्व–विद्या की खान, विश्व की आध्यात्मिक–राजधानी काशी में जहाँ सभी धर्म–सम्प्रदायों के पीठ व पीठाधिपति विद्यमान हैं। जहाँ पुण्य तोया भगवती भागीरथी गंगा के तट पर सर्वाधिक सन्त–साधनारत हैं। काशीपीठाधीश्वर श्री रामशरणाचार्य जी के संरक्षण में स्थापित आश्रम के रजिस्टर्ड–ट्रस्ट

"श्री सीताराम मन्दिर, काशीपीठ समिति" के माध्यम से विविध धार्मिक–सामाजिक सेवा–कार्य चल रहे हैं। इनके भविष्य में भी सुचारू–संचालन के लिए "स्थायी कोष योजना" प्रारम्भ की गई है। इसमें आप जो भी अपनी अक्षय–निधि या 10,5,1 हजार या जो भी धनराशि जमा करायेंगे, वह धन बैंक में जमा रहेगा। उसके ब्याज से सदा ही सन्त–सेवा, गौ–सेवा, भण्डारा–भोजन, यज्ञ–हवन, कुम्भ–मेलों में सन्त–सेवा शिविर, सत्संग, चिकित्सा, संस्कृत शिक्षा, धर्म–प्रचार, साहित्य–प्रचार, मन्दिर निर्माण, समाज–सेवा आदि कार्यों में व्यय होते रहेंगे। एतदर्थ सहयोग व पूछताछ निम्न पते पर सहर्ष आमन्त्रित है। यदि आप ऐसा कोई संकल्प कर रहे हों तो हमें भी आज ही, कल का कोई भरोसा नहीं, शीघ्र सूचित करें।

ट्रस्ट को आप द्वारा दी गई सभी प्रकार की दान–राशियों पर आय–कर की धारा 80–जी के अन्तर्गत छूट प्राप्त है।

कृपया धनराशि "*श्री सीताराम मन्दिर, काशीपीठ समिति*" के नाम एकाउण्ट–पेयी ड्राफ्ट, चैक या मनी–आर्डर द्वारा जिस सेवा–मद के लिए भेजी गई हो उसका उल्लेख करके व्यवस्थापक–श्री सीताराम मंन्दिर, चोंच, रामचौक, पो. बालोतरा (राज.) 344 022 दूरभाष – (02988) 23386 के पते पर प्रेषित करें।



अन्तर्राष्ट्रीय रामशरण मिशन

भारत मे पूर्व और पश्चिम की दो ऐतिहासिक नगरियों, काशी व अग्रोहा में एक साथ दो जगह अद्‌भुत

सर्वतीर्थधाम का निर्माण

इस सप्तखण्डीय विशाल मन्दिरों में जहाँ बद्रीनाथ, जगन्नाथ, रामेश्वरम्, द्वारिका के चारों भव्य धाम बनेंगे, वहीं सोमनाथ, महाकालेश्वर , विश्वनाथ,पशुपतिनाथ आदि द्वादश ज्योतिर्लिंग, व अयोध्या, मथुरा, माया(हरिद्वार) आदि सप्त–पुरियों, भगवान राम की लीला से सम्बन्धित सभी तीर्थ–अयोध्या, जनकपुर चित्रकूट, नासिक, किष्किन्धा आदि के साथ अन्य प्राचीन तीर्थ नैमिष, प्रयाग, वृन्दावन, तिरुपति, मदुरै, कन्या–कुमारी, वैष्णोदेवी, अमरनाथ, केदारनाथ,गंगोत्री जमुनोत्री, उत्तरकाशी आदि का एक ही जगह भव्य रूप से दर्शन कराया जायेगा।

इसमें सर्व तीर्थ–धाम के अतिरिक्त संस्कृत के निःशुल्क आवास, भोजन, शिक्षा के गुरुकुल व सन्त–निवास तथा धर्मशाला के रूप में सौ–सौ कमरों के विशाल–भवन भी बन रहे हैं। इन सभी को भारतीय धर्म–संस्कृति में विश्वास रखने वाला कोई भी सज्जन अपने पूज्य पूर्वजों की स्मृति में संगमरमर के पट्ट पर उनके नामोल्लेख पूर्वक भी बनवा सकते है।

अग्रोहा व काशी में ये सभी निर्माण काशी– पीठाधीश्वर श्री रामशरणाचार्यजी म. के संरक्षण व प्रेरणा से बने आश्रम व उसके रजिस्टर्ड ट्रस्ट "श्री सीताराम मन्दिर ट्रस्ट, काशीपीठ" के माध्यम से बन रहे हैं। ज्ञातव्य है कि ट्रस्ट को आप द्वारा दी गई सभी प्रकार की दान्–राशियों पर आयकर की धारा 80 जी के अन्तर्गत छूट प्राप्त हैं।

ट्रस्ट की निर्माण–योजना में

सहयोग का प्रारूप

※ सर्व–तीर्थ–धाम के लिए प्रत्येक भव्य तीर्थ– धाम की लागत लगभग 2,50,000 रू. (अढाई लाख रू.)।

※ स्वतन्त्र एक फ्लैट–रसोई–स्नानगृह–शौचा–लय उपवन, आगे बरामदा एवं अन्दर चौक सहित। लागत लगभग 1,50,000 रू. (डेढ लाख रू.)।

※ एक बड़ा कमरा–स्नानगृह, शौचालय, उपवन सहित आकर्षक सजावट–युक्त लागत एक लाख रूपये।

※ एक साधारण कमरा–स्नानगृह, शौचालय –युक्त लागत लगभग साठ हजार रूपये।

※ एक छोटा कमरा लागत चालीस हजार रू. ※ सन्त–साधना–कुटी व गुफा लागत बीस हजार।

※ जल–सेवा–प्याऊ, जल–शीतलक (फ्रिज), शौचालय, स्नानगृह (प्रत्येक) लागत दस हजार रूपये।

※ मारबल बैंच 5,000 रू, साधारण बैंच 2,500 रूपये।

※ तख्त–बिस्तर, पंखा, नल (प्रत्येक) एक हजार रूपये।

※ दरी 500 रू., बर्तन–सेट 250 रू., बिजली 100 रू. आदि।

※ या आश्रम–उपयोगी अन्य भी कोई नकद वस्तु यथेष्ट।

※ गौशाला में गौ–सेवा (प्रत्येक) पांच हजार रू. या यथा–शक्ति।

इस विषय पर यदि आप प्रभु–प्रेरित, स्वःस्फुरित कोई संकल्प कर रहें हो तो हमें भी अवश्य सूचित करें। याद रखें, विचार परिवर्तन–शील है, अतः 'शुभ को शीघ्र, अशुभ में देर', इस पुण्य से वंचित न रहें। सहयोग व पूछताछ इस पुस्तक–प्राप्ति के पते पर सहर्ष आमंत्रित हैं।

– – – – –

तीन लोक से न्यारी, काशी विश्वनाथ के त्रिशूल पर टिकी,

भारत की आध्यात्मिक राजधानी काशी

मुक्ति जन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघ हानिकर।
जहँ बस शंभु–भवानी, सो काशी सेइअ कस न।।

गो. तुलसी से लेकर सभी अर्वाचीन– प्राचीन दिव्य–सन्तों द्वारा सेवित भूतनाथ –भोलेनाथ भगवान् शंकर की नगरी, उत्तर–वाहिनी भगवती भागीरथी गंगा के धनुषाकार तट पर बसी काशी (वारा– णसी) में आज भी प्रतिदिन देशी–विदेशी लाखों यात्री दर्शनार्थ आते हैं। पर्यटक –विभाग की रिपोर्ट के अनुसार भारत में आने वाले सर्वाधिक विदेशी यहाँ जिस नगर को देखने आते हैं, वह वाराणसी ही है। कारण कि भारत की राजनैतिक –राजधानी भले ही दिल्ली हो, किन्तु आध्यात्मिक–राजधानी तो निर्विवाद रूप से वाराणसी ही है।

यहाँ प्राचीन तीर्थों के अतिरिक्त सभी सम्प्रदायों के पीठ व उनके आचार्य विद्य –मान हैं। एक ही नगर में तीन–तीन अन्तर्राष्ट्रीय–स्तर के विश्व विद्यालय जो हैं। जहाँ एक ही जगह पर सम्पूर्ण भार– तीय धर्म, संस्कृति, दर्शन या सांगोपांग भारतीयता का साक्षात्कार हो सकता है।

किन्तु विश्व–भर से आने वाले ये देशी–विदेशी जिज्ञासु क्या अपने उद्देश्य में सफल हो पाते हैं? तो इसका उत्तर नकारात्मक ही होगा। इसका अनुभव स्वयं काशी– पीठाधीश्वर श्री रामशरणाचार्य जी ने ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, स्विट्जरलैण्ड, होलैण्ड, इटली, बेल्जियम आदि देशों की अपनी विभिन्न विदेश–यात्राओं में अक्सर किया है।

इन्हीं बातों से प्रेरित होकर आप श्री के सक्रिय–संरक्षण में "श्री रामशरण मिशन" के 'अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र' के मुख्यालय के रूप में काशी के आश्रम को विकसित किया जा रहा है। यद्यपि इसकी कई शाखाये विश्व के अन्य देशों में भी शीघ्र ही प्रारम्भ हो रही हैं।

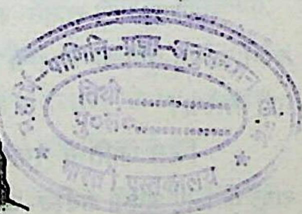
कंकर–कंकर भी शंकर है।

मालवीय जी के काशी हिन्दू–विश्व–विद्यालय व डीजल रेल इंजन कारखाने के बीच च्यवन–मुनि की तपस्थली पर स्थित भिखारीपुर के श्री सीताराम मन्दिर (रजि. ट्रस्ट) के लगभग एक एकड़ भूमि के विस्तृत आश्रम में भी श्री सीताराम मन्दिर व दो मंजिली धर्मशाला में अभी तक 16 कमरे,1 हॉल,बगीचा आदि बनकर तैयार है।

आगे सर्व–तीर्थ–धाम के अतिरिक्त काशी के तीसरे विश्वनाथ मन्दिर में 51 फुट ऊँचा विशाल शिवलिंग, 51 फुट ऊँची ही श्री संकटमोचन हनुमान जी की प्रतिमा, यज्ञ–शाला, गौ–शाला,चिकित्सा–शोध–संस्थान, संस्कृत– गुरूकुल, धार्मिक–प्रदर्शनी, योग–शिक्षा–केन्द्र आदि निर्माण–प्रक्रिया में हैं।

इसके अतिरिक्त "हिन्दू–धर्म– प्रचारक–केन्द्र" में सैंकड़ों समर्पित युवा–संतों व ब्रह्मचारियों को देश– विदेश के केन्द्रों में धर्म–प्रचार के लिए भेजने हेतु प्रशिक्षण दिया जायेगा। परम–पवित्र– पुण्य–सलिला–भगवती – भागीरथी गंगा के पावन–सुरम्य मन– मोहक तट पर एक पक्का "रामशरण घाट" का निर्माण भी प्रस्तावित है। उसमें एक हजार से अधिक की राशि के दान–दाता का नाम प्रत्येक –पत्थर पर अंकित होगा। जिस काशी का कंकर– कंकर भी शंकर है, वहाँ तो मन्दिर– निर्माणार्थ एक ईट भी लगाने वाला हजारों वर्ष तक स्वर्ग का पुण्य पाता है। अधिक क्या कहें!





अग्रवंशीय बन्धुओं की जन्मभूमि, ऐतिहासिक नगरी

श्री महाराजा अग्रसैन की राजधानी अग्रोहा

सारे भारत में ही नहीं, विश्वभर में यत्र–तत्र फैले लगभग 2 करोड़ अग्रवंशीय–बन्धुओं की जन्मभूमि, अग्रगणराज्य नरेश श्री अग्रसैन जी की राजधानी, अग्रोहा कभी देव–नगरी स्वर्ग की तरह पल्लवित थी।

विश्व में समाजवाद के प्रथम प्रणेता महाराज अग्रसैन के अपने " एक ईट, एक रुपया " के सिद्धान्त से बाहर से आने वाले हर अग्र–बन्धु को उस समय अग्रोहा में रहने वाले लगभग एक लाख अग्र– बन्धुओं से एक लाख ईटें व एक लाख– मुद्राएं एकत्रित कर दिलवाते थे जिससे वह अपना व्यापार व मकान बना सकें।

किन्तु कालान्तर में विदेशी–आक्रान्ताओं द्वारा ध्वस्त यही ऐतिहासिक विशाल नगरी अग्रोहा, आज हरियाणा राज्य के हिसार जिले में हांसी–सिरसा मार्ग पर अवस्थित मात्र ऊँचे–ऊँचे टीबों में ऐतिहासिक स्मृतियाँ संजोए, हजारों वर्षों से अपने उद्धारक– अग्र–बन्धुओं को पुकार रही है।

विश्व के इतिहास में यहूदी–फिलीस्तीनी आदि साधन–हीन जातियों द्वारा प्राण–प्रण से संघर्ष करके अपने उजड़े हुए वतन को फिर से बसाने के तो अनेकों उदाहरण मिल जायेंगे।

किन्तु ऐसी साधन–सम्पन्न जाति द्वारा बिना किसी संघर्ष के होते हुए भी अपनी जन्म–भूमि को फिर से न बसा पाने का उदाहरण इसके अलावा और कोई नहीं मिलेगा।

जिस जाति ने मुगलों के सामने राणाप्रताप को भामाशाह के माध्यम से राष्ट्र के लिए अपना सर्वस्व–दान करके भी झुकने नहीं दिया। बिड़ला, बजाज जैसे हजारों धन्ना–सेठों के माध्यम से इस जाति ने स्वातन्त्र्य–समर का लगभग सारा

अर्थ–भार अपने कंधों पर वहन किया। किन्तु उस ज्योति को बुझने नहीं दिया और अन्ततः देश को स्वतंत्र करा ही दिया। आज भी देश के अर्थ–तंत्र की आधी से भी अधिक हिस्सेदार, विभिन्न–चुनावों में सभी दलों को सर्वाधिक अर्थ–दान करने के बावजूद भी राज–तंत्र में अपना प्रतिनिधित्व नगण्य स्वीकार करने वाली जाति अपनी जन्म–भूमि के उद्धार जैसे अपनी अस्मिता के प्रश्न पर भी मौन है! किम् आश्चर्यमतः परम्?

आज आसाम, बिहार, बंगाल आदि प्रदेशों में "मारवाड़ी भगाओ" आन्दोलन के रूप में आप ही लोगों को करोड़ों रू. के पीढ़ियों से संजोये व्यापार को एक रात में आग लगाकर घर छोड़ने पर विवश किया जा रहा है। ऐसे हजारों परिवार भटक रहे हैं। जाएं तो जाएं कहाँ?

राजनैतिक परिस्थितियाँ बदल रही हैं, पल–दर–पल। कल क्या होगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। अपने घर को मजबूत करो। अपनी जन्म–भूमि को संवारों। यदि गम्भीरता से आप सभी एक हो जाएं इस मुद्दे पर, तो इसको एक नगरी का रूप देकर आने वाले समय में पंजाब–हरियाणा की राजधानी–बंटवारे में चण्डीगढ़ के पंजाब को मिलने के बाद हरियाणा की नई राजधानी के रूप में भी विकसित कर सकते हैं

काशीपीठाधीश्वर श्री रामशरणाचार्य जी व श्री बनारसीदास गुप्त (पूर्व मुख्यमंत्री हरियाणा, अध्यक्ष अ.भा. अग्रवाल सम्मेलन) तथा समाज के अन्य गणमान्य नेताओं के सक्रिय सहयोग से अग्रोहा निर्माण संघ के माध्यम से अभी अग्रोहा में जहाँ भव्य सर्व–तीर्थ–धाम बन रहा है। वहीं एक वैदिक–विद्यापीठ, आयुर्वेद–शोध–संस्थान, महाराजा अग्रसैन पुरातत्त्वीय संग्रहालय, बेरोजगार अग्र–बन्धुओं के लिए लघु उद्योग केन्द्र, सेवा–निवृत्तों द्वारा समाज–सेवार्थ वानप्रस्थ –आश्रम, बेसहारा विधवाओं के लिए कोष आदि भी निर्मार्ण की प्रक्रिया में है।

यों अग्रोहा में अभी तक विशाल शिला–शक्ति मन्दिर, महाराजा अग्रसैन मैडीकल कॉलेज व अस्पताल तथा ट्रस्ट द्वारा महा –लक्ष्मी जी, मां सरस्वती,

महाराजा अग्रसैन जी के भव्य–मन्दिर, अतिथिशाला आदि में 100 से ऊपर आवासीय कमरे, शक्ति सरोवर आदि का निर्माण हो चुका है।

योजनाएं और भी हजारों बन सकती है, लेकिन आपके सहयोग के बल पर। अभी तो हमें आपके सुझावों से अधिक सहयोग की आवश्यकता है। अतः सर्व–तीर्थ–धाम आदि में, सहयोग के उक्त प्रकार से, साधन–सम्पन्न अग्रबन्धु कम से कम एक कमरा निर्माण के स्वप्रेरित संकल्प से सूचित करें। अपने परिचितों व क्षेत्र की समितियों को सामूहिक रूप से सहयोग के लिए प्रेरित करें। तब केन्द्र से प्रचारार्थ पहले प्रवक्ता व बाद में स्वयं महाराज श्री का भी कार्यक्रम बनाया जायेगा।

कभी "एक ईट, एक रुपया" के सिद्धान्त से अग्रोहा ने आप को बसाया था। आज अग्रोहा अपने बसने के लिए आपसे वापस "एक ईट, एक रुपया" मांग रही है। हर अग्रवंशीय बन्धु प्रतिमास "एक ईट, एक रुपया" अग्रोहा–निर्माणार्थ भेजें। प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति कम से कम 10 रू. व प्रति परिवार 100 रू. छोटे से छोटे व्यक्ति के लिए भी पितृ–ऋण से मुक्ति का यह सबसे सरल माध्यम है। इसमें संकोच न करें। बूंद–बूंद से ही सागर भरता है। प्रति **'अग्रसैन–जयन्ति'** या कभी भी स्वयं अपना व अपने 100–50 परिचित अग्र–बन्धुओं का भी जोड़कर भेज सकते हैं। यह समाज–सेवा भी है। शादी–ब्याह, जन्म–दिन आदि खुशी के मौके पर, प्राप्त–दहेज आदि में से कुछ अंश भेजने का संकल्प करें।

अपने संकल्प, सहयोग, सुझाव, पूछताछ के लिए इस पुस्तक प्राप्ति के पते पर पत्र–व्यवहार करें।



पुस्तक समीक्षा :—

श्री राम जन्म भूमि विवाद : तथ्य और सत्य

गत वर्षों पुस्तक महल (रैपिडैक्स), दिल्ली द्वारा भारत में सर्वाधिक बिकने का रिकार्ड बनाने वाली इस पुस्तक की ख्याति का यही प्रमाण है कि इसका लाखों की संख्या का विशाल पहला संस्करण पुस्तक—विमोचन के समय ही हाथों हाथ बिक गया। परिणाम स्वरूप दूसरे ही महिने उसी विशाल रूप से लाखों की संख्या में दूसरा संस्करण व फिर हर माह निकलने वाले नए संस्करणों में इस विषय की ताजा 'वर्तमान—स्थिति' जुड़ती गई। सन् 1528 से आज तक की राम—जन्म भूमि से सम्बन्धित दोनों पक्षों की तटस्थ सम्पूर्ण प्रामाणिक जानकारी—युक्त यह एक मात्र पुस्तक मार्केट में है । इस पुस्तक में जहाँ मन्दिर के निर्माण से विध्वंस और अब तक इसकी मुक्ति के लिये 464 वर्षों के 77 संग्रामों का क्रांन्तिकारी इतिहास सचित्र वर्णित हैं, वहीं पाठकों के लिये नीर — क्षीर का विवेक करने को बीसों वर्षों के सश्रम जुटाए विभिन्न दुर्लभ प्रमाणों—साक्ष्यों में साहित्यिक, ऐतिहासिक, राजस्व, पुरातत्त्वीय, हिन्दु—पक्ष, मुस्लिम—पक्ष, संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, फ़ारसी आदि भाषाओं के प्राचीन मूल—प्रामाणिक दस्तावेजों की 20 दुर्लभ प्रतिलिपियाँ भी साथ ही संग्रहित है।

विश्व का सर्वाधिक चर्चित मुद्दा

साथ ही इसमें शिलान्यास एवं प्रथम कार — सेवा 30 अक्टूबर, 2 नवम्बर के काले दिन का गोली काण्ड, 6 दिसम्बर 1992 ई. का ऐतिहासिक दिन व गुम्बद ढ़हाने के रोमांचक क्षणों का हू—बहू वर्णन, अधिग्रहित भूमि का प्रामाणिक नक्शा, नये प्रस्तावित मन्दिर का सचित्र प्रारूप, उपासना स्थल विधेयक के साथ नवीनतम संशोधित संस्करण में आन्दोलन की भावी रणनीति का विस्तार से वर्णन हैं । जिस मुद्दे ने तीन केन्द्रीय व चार राज्य—सरकारों को धराशाही कर दिया । विश्व का अब

तक का सर्वाधिक चर्चित मुद्दा जो इतने लम्बे समय तक लगातार आन्दोलित रहा । इस विषय में रूचि रखने वाले हर पाठक के लिये संग्रहणीय ग्रन्थ है ।

लेखक स्वयं मुक्ति – सैनानी भी

इस पुस्तक के लेखक काशीपीठाधीश श्री रामशरणाचार्य जी स्वयं इस आन्दोलन के अन्तिम व 77 वे संघर्ष के डेढ दशक से सहभागी व साक्षी रहे हैं । वहीं भारत के सबसे बडे पुस्तक–प्रकाशक पुस्तक– महल (रेपिडेक्स), खारी बावली, दिल्ली – 6 ने इसे बड़े ही सुन्दर मुख पृष्ठ व आकर्षक छपाई से, सस्ते में प्रकाशित किया हैं । देशभर के बुद्धिजीवियों व सभी प्रमुख समाचार–पत्रों में पुस्तक–समीक्षा, विज्ञापनों आदि से प्रशंसित व प्रचारित यह पुस्तक कश्मीर से कन्याकुमारी तक रेल्वे प्लेटफार्मों पर 5000 से भी अधिक ए. एच. व्हीलर के बुक – स्टालों व आपके नगर के सभी प्रमुख पुस्तक विक्रेताओं से प्राप्त कर अवश्य पढ़ें । अन्यथा हमारे पते पर लिखें। पुस्तक मूल्य पुस्तकालय संस्करण: 36/– रुपये, पेपर बैक संस्करण: 20/– रूपये, डाकखर्च : 5/– रुपये । अपने साथियों में अधिकाधिक इस पुस्तक को वितरित, प्रसारित कर रामजन्म भूमि मुक्ति में सहायक बने । अतः पुस्तक थोक में मंगायें ।

श्री राम जन्म भूमि मुक्ति यज्ञ

लेखक – काशी पीठाधीश रामशरणाचार्यजी महाराज

इस पुस्तक में सन् 1528 से 6 दिसम्बर 1992 व अतीत, वर्तमान और भविष्य की सम्पूर्ण जानकारी के साथ ही पहली बार श्री कृष्ण जन्मभूमि व काशी विश्वनाथ मंदिर का भी क्रांतिकारी इतिहास, यहूदी त्रिकालदर्शी नोस्त्रादमस की भारत के बारे में भविष्यवाणी व विश्व में व्याप्त हिन्दूत्व का समग्र लेखा–जोखा जिसे लाखों पाठकों की तरह आप भी एक श्वांस में पढे विना नहीं छोड़ना चाहेगें ।

प्रकाशक :– ज्ञान भारती प्रकाशन, जगतगंज, वाराणसी मूल्य – 40/– रूपये

काशीपीठाधीश्वर श्री रामशरणाचार्यजी के

अन्य ग्रन्थ

1.	विश्व, भारत और मैं (विदेश संस्मरण)	100/–
2.	I, India & Abroad	75/–
3.	श्री राम–जन्म–भूमि मुक्ति यज्ञ	40/–
4.	श्री राम–जन्म भूमि विवाद : तथ्य और सत्य	20/–
5.	कृष्ण–जन्म भूमि का क्रांतिकारी इतिहास	15/–
6.	काशी विश्वनाथ मन्दिर का इतिहास	15/–
7.	रामजन्म भूमि का संक्षिप्त इतिहास	5/–
8.	तू कहता कागद की लेखी	25/–
9.	मैं कहता आंखन की देखी	25/–
10.	दैनिक – प्रार्थना	20/–
11.	संक्षिप्त – पुराण (प्रत्येक)	20/–
12.	पुराण – कथा (प्रत्येक)	5/–
13.	सिय रघुवीर विवाह	40/–
14.	वन्दऊँ नाम राम रघुवर को	25/–
15.	रामचरित मानस एहि नामा	25/–
16.	कबीरा खड़ा बाजार में	25/–
17.	सत्संग – सुधा	25/–
18.	रामचरित मानस	30/–
19.	महाकुम्भः एक दृष्टिकोण	20/–
20.	भरत पयोधि गंभीर	25/–
21.	मानस और भागवत	25/–
22.	मानस–प्रवचन (प्रति भाग)	35/–

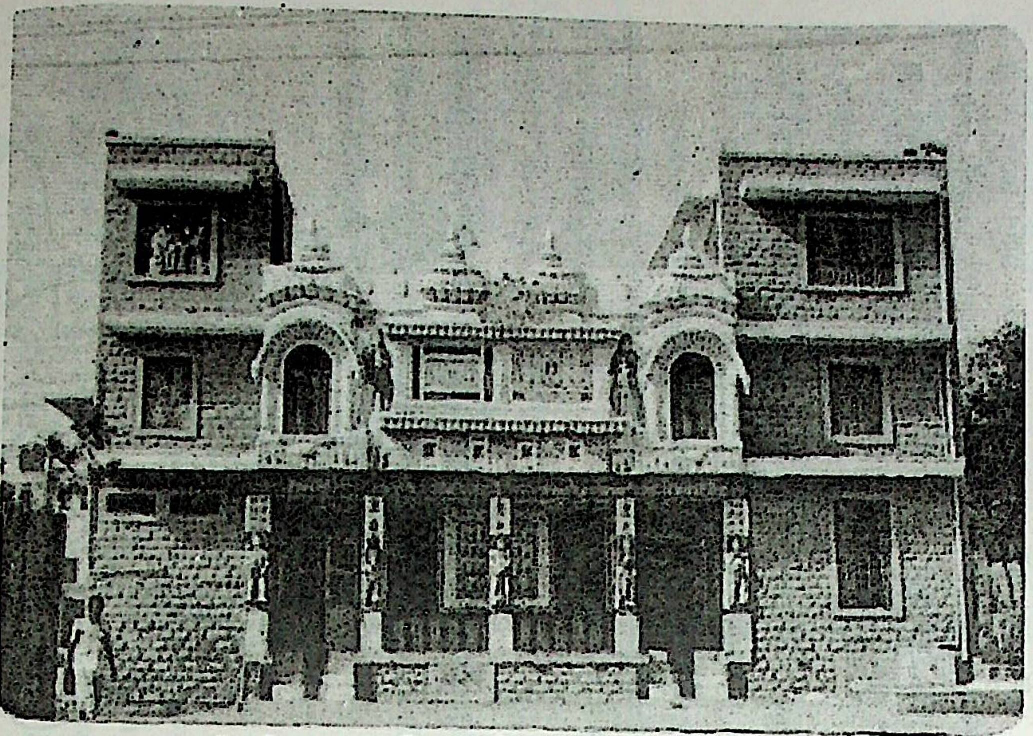
23.	भागवत–प्रवचन (प्रति भाग)	35/–
24.	हिन्दु अस्तित्व का प्रश्न	25/–
25.	विचार–मंथन	40/–
26.	संस्कृत–भाषा व साहित्य का सरल–प्रशिक्षण	25/–
27.	पातंजल महा–भाष्य अनुशीलन	60/–
28.	शब्दों में छिपे हैं रहस्य	25/–
29.	प्रवचनः ध्वनि–दृश्य–मुद्रिका(विडियो कैसेट,प्रत्येक)	150/–
30.	प्रवचनः ध्वनि–मुद्रिका (ऑडियो कैसेट,प्रत्येक)	25/–

कृपया अन्य ग्रन्थों के प्रकाशन में सहयोग रूपी ज्ञान–यज्ञ, ब्रह्म–भोज के यजमान बनने के इच्छुक सज्जन 'उर प्रेरक रघुवंश विभूषण' की प्रेरणा से हमें भी अवगत कराने का पुण्य प्राप्त करें ।









श्री सीताराम मन्दिर, चोंच, रामचौक, बालोतरा

(पृष्ठ 98 का शेष...)

एक कुत्ते को रोटी का टुकड़ा डाल दें तो वह भी पूँछ हिलाकर मालिक की प्रार्थना करके तब रोटी खाता है। क्या हम कुत्ते से भी गये-बीते हैं कि जिस ईश्वर ने हमको सब-कुछ दिया है, उसकी हम प्रार्थना भी न करें? इससे बड़ा पाप और कौन-सा हो सकता है! अतः श्री सीताराम मन्दिर, चोंच, बालोतरा-मारवाड़ के प्रतिष्ठित श्री रामानन्द वैष्णव सम्प्रदायानुगत बिन्दु-गादी आश्रम की दैनिक-प्रार्थना के साथ ही अखिल भारतीय रामानन्दीय आश्रमों की प्रार्थना, स्तुतियाँ, भजन, संकीर्तन व नित्यकर्म उपयोगी कुछ मन्त्र-पाठ आदि इस पुस्तक में एकत्र संकलित किये गये हैं। इनका सदुपयोग कर अपने जीवन को सार्थक बनावें। मूल्य 21/- रुपये मात्र

पुस्तक प्राप्ति स्थल :
रामशरणाचार्य
श्री सीताराम मन्दिर, चोंच
बालोतरा (राजस्थान)
दूरभाष – (02988) 23386



दैनिक–प्रार्थना

प्रार्थना की शक्ति संसार में सबसे बड़ी शक्ति है। किन्तु प्रार्थना की नहीं जाती, अपितु स्वतः होती है। प्रार्थना ही प्रार्थी का स्वरूप है। प्रार्थना वास्तविकता का आदर करने से स्वतः जाग्रत होती है। जहाँ पुरुषार्थ "अहम्" को पोषित करता है। वहीं प्रार्थना "अहम्" को खाकर प्रार्थी को लक्ष्य से अभिन्न करती है। इतना ही नहीं प्रार्थना से प्राप्त निर्दोषिता साधक को गुणों के अभिमान से रहित कर देती है।

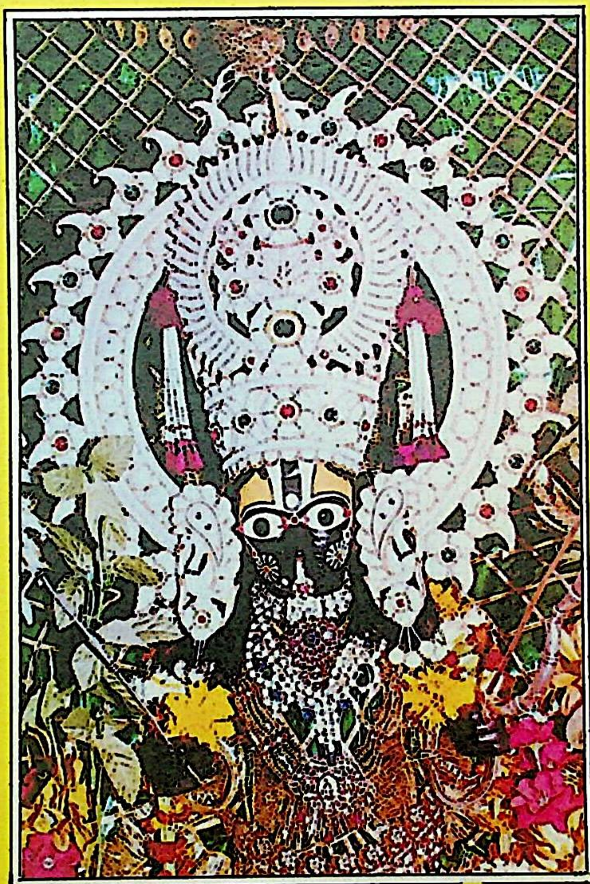
भगवान् की प्रार्थना ऐसी वस्तु है कि वह यदि शुद्ध श्रद्धा भक्ति से की जाय तो कोई भी ऐसा कार्य नहीं है जिसकी सिद्धि न हो सके। अतः मनुष्य को ईश्वर की प्रार्थना तो अवश्य ही करनी चाहिए। जिस ईश्वर ने हमें मनुष्य शरीर दिया है और उसकी रक्षा के लिए अन्न, फल, सब्जी इत्यादि अनेक पदार्थ बनाये हैं, उसका कितना उपकार है, यह वाणी से कहा नहीं जा सकता। जो उपकार को नहीं मानता, उससे बड़ा कृतघ्न,पापी और कोई नहीं हैं। इस विषय मे '*सूरदास*' जी कहते हैं –

"मों सम कौन कुटिल–खल कामी।
जो तनु दियो ताहि बिसरायो, ऐसो नमक हरामी ।।
मरि–मरि उदर विषै को धायो, जैसे सूकर ग्रामी।
हरिजन छाँड़ि हरि–विमुखन की,निसदिन करत गुलामी ।।
पापी कौन बड़ौ जग मों ते, सब पतितन में नामी।
सूर पतित कौ ठौर कहाँ हैं, तुम बिनु श्रीपति स्वामी ।।"

...शेष पृष्ठ 97 पर

श्री सीताराम मन्दिर, चाँच की

दैनिक-प्रार्थना



सम्पादक

रामशरणाचार्य

